मचा रखा है। मैं उसी के साथ युद्ध करने जा रहा हूं।'' साथ में वह बनावटी पत्र भी विश्वभूति को थमा दिया, जिसमें पड़ोसी सामन्त द्वारा युद्ध घोषणा की धमकी लिखी हुई थी।

पत्र को देखकर विश्वभूति का क्षत्रियत्व जाग उठा। उसने प्रार्थना की- ''महाराज! मेरे होते हुए आप युद्ध में जाएं, यह आपने सोचा कैसे? यह बात सुनकर मेरा सिर शर्म से झुक गया है। आप आज्ञा दीजिए, मैं उस सामन्त का सिर कुचल दूंगा?''

राजा तो यही चाहता था, उसने स्वीकृति प्रदान कर दी। विश्वभूति सेना को सुसज्जित कर चल पड़ा। पर पुरूषसिंह ने कोई धमकी नहीं दी थी, वह लड़ना भी नहीं चाहता था। जब उसे पता चला कि विश्वभूति सेना सहित आ रहा है, तो वह उपहार लेकर सामने आया। बहुत से हाथी, घोड़े, हीरे-मोती आदि राजा योग्य उपहार समर्पित कर चलता बना। विश्वभूति ने बिना लड़े पुरूषसिंह को उसकी जिम्मेदारियों के लिए जरूरी निर्देश दिए, ताकि सीमा सुरक्षित रह सके।

विश्वभूति युद्ध मैदान में वापिस आया। वह पुनः राजकीय उद्यान के लिए सपरिवार जाने लगा। दरबान ने प्रार्थना की- ''महाराज! अब आप रुकिए, क्योंकि युवराज विशाखनंदी उद्यान में परिवार सहित जल-क्रीड़ा कर रहा है।''

विश्वभूति रूक गया। उसे गहरा आघात हुआ। वह सोचने लगा- 'मैं जिनके लिए प्राण न्योछावर करने को तैयार हूं, वे मेरी जान के प्यासे हैं। यह कपटयुक्त व्यवहार मुझे उद्यान से निकलने के लिए किया गया।' उद्यान में ही क्रोध उमड़ आया। क्रोधावेग में वहीं पर कपित्थ (कैथ) के वृक्ष पर पांव से प्रहार किया। एक प्रहार से वृक्ष के सारे फल धरती पर गिर पड़े। विश्वभूति ने गुस्से में आकर द्वारपालों से कहा- ''जैसे मैं एक झटके से इन फलों को धरती पर गिरा सकता हूं, वैसे ही एक ही बार में कितनों के प्राण मैं ले सकता हूं। पर राजा के गौरव के कारण मैं ऐसा नहीं कर रहा। उद्यान में ही जाना था, तो मुझसे पूछकर जा सकता था। मैं युवराज को इंकार नहीं करता, पर यह धोखा करने की क्या जरूरत थी? अब जाओ, अपने राजकुमार विशाखनंदी से कह दो, इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।''

विश्वभूति ने गुस्से में ये बातें कह तो दीं, पर यही ग्लानि शीघ्र ही वैराग्य में बदल गई। उसने एक ही झटके में घर-परिवार का मोह छोड़ा और आर्य संभूति से संयम ग्रहण कर लिया। कठोर साधना आदि दीर्घ तपस्या से तपोजन्य उपलब्धियां प्राप्त कीं।

एक बार की बात है, मुनि विश्वभूति अनगार मथुरा में भ्रमण कर रहे थे। इधर मथुरा में विशाखनंदी अपनी शादी के लिए आया हुआ था। तप के कारण विश्वभूति का शरीर जीर्ण-शीर्ण हो चुका था। उसे पहचानना मुश्किल था। मुनि विश्वभूति तपस्या के पारणे के लिए भिक्षा के लिए घूम रहे थे। युवराज विशाखनंदी के सेवकों ने उन्हें पहचान लिया और युवराज विशाखनंदी को सूचना दी। विशाखनंदी सामने आया। उसने देखा एक महान् योद्धा तप के कारण जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। उसका क्रोध शांत नहीं हुआ था। वह मुनि को घूरकर देख रहा था।

अचानक एक सद्य-प्रसूता गाय मुनि को टक्कर देकर चलती बनी। मुनि की इस दुर्दशा से वह पापी विशाखनंदी खूब प्रसन्न हुआ। उसने व्यंग्य करते हुए कहा- ''विश्वभूति! तुम्हारा वह पराक्रम जो कुपित्थ को तोड़ते समय देखा गया था, कहां गायब है?''

राजकुमार के व्यंग्यमय वाक्य मुनि की क्रोधाग्नि का कारण बने। उन्होंने आवेश में आकर कहा- ''दुष्ट! मैं साधु बन गया हूं, तो भी तू मेरा मजाक कर रहा है। मैने जब संसार से रिश्ता तोड़ दिया है, तो

मेरी साधना का मजाक करने का तुझे कोई अधिकार नहीं। तू मेरी क्षमा व तपस्या को मेरी दुर्बलता समझ रहा है। पर तुझ अज्ञानी को साधु भाषा में समझाना असम्भव है।''

मुनि का क्रोध अपने अंतिम आवेश में था। उन्होंने उसी समय उस गाय को दोनों सींगों से पकड़कर चक्कर की तरह घुमाकर आकाश में उछाल दिया। फिर उन्होंने निदान करते हुए कहा- ''क्या दुर्बल सिंह श्रृगाल से गया गुजरा होता है? यदि मेरे जप, तप, संयम व ब्रह्मचर्य में शक्ति हो, तो अगले जन्म में असीमित शक्तिशाली बनूं।''

इस प्रकार बिना आलोचना किए और निदान के कारण मुनि कालधर्म को प्राप्त हुए।

यहां आश्चर्य इस बात का है कि दिगम्बर आचार्य गुणभद्र ने इस बात का वर्णन श्रेयांस तीर्थंकर के पूर्वभव बताने में किया है। वहां सभी प्रकरण एक समान नहीं है, वहां विश्वभूति के स्थान पर विश्वनंदी नाम आया है। विश्वनंदी के स्थान पर विश्वभूति। परिवार के नामों में भी अंतर है।

उत्तरपुराण में आया है कि विश्वभूति दीक्षा लेकर राज्य और अपने छोटे भाई को दे देते हैं, पर यहां कपित्थ वृक्ष व कपट युद्ध का वर्णन नहीं है। यहां दोनों भाइयों का उद्यान में युद्ध दिखाया है।

उत्तरपुराण के अनुसार विशाखनंदी शादी के लिए नहीं जाता,वह तो राज्य-च्युत हो जाता है और एक राजा का दूत बनकर मथुरा जाता है। वहां वह एक वेश्या के मकान में बैठकर यह नजारा देखता है कि उसका भाई मुनि बना घूम रहा है।

जैनधर्म में अध्यात्म शक्ति व लब्धि का प्रयोग सांसारिक कामों के लिए वर्जित है। निदान करने पर उसका प्रायश्चित व आलोचना कर ली जाए तो जीवन विशुद्ध बन जाता है। पर वैर की समाप्ति तत्काल न हो तो वैर लम्बे समय तक चलता रहता है।

सत्तरहवां भव

वहां से आयु पूर्ण कर महाशुक्र कल्प में उत्कृष्ट स्थिति वाला देव हुआ।

अठाहरहवां भव- त्रिपृष्ट वासुदेव

देवलोक से आयुष्य पूर्ण कर पोतनपुर नगर के प्रजापति राजा व रानी मृगावती के यहां पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। माता ने जन्म से पूर्व सात स्वप्न देखे। जन्म के समय शिशु के पृष्ठ भाग में तीन पसलियां होने के कारण उसका नाम त्रिपृष्ट रखा गया। राजा प्रजापति प्रतिवासुदेव अश्वग्रीव के माण्डलिक राजा थे।

राजा प्रतिवासुदेव ने किसी ज्योतिषी से पूछा- ''मेरी मृत्यु कैसे होगी?''

ज्योतिषी ने कहा- ''राजन! जो आपके दूत चण्डमेघ को पीटेगा, तुङ्गगिरी पर रहे केसरी सिंह को मारेगा, उसी के हाथों आपकी मृत्यु होगी।''

यह सुनकर अश्वग्रीव भयभीत हुआ। उसे अपने दूतों से ज्ञात हुआ कि प्रजापति राजा के बड़े पुत्र बहुत बलशाली हैं। राजा ने परीक्षा करने के लिए चण्डमेघ दूत को उनके पास भेजा।

राजा प्रजापति उस समय अपनी सभा में बैठा था। संगीत की झंकार से राजसभा का वातावरण इन्द्रसभा का दृश्य प्रस्तुत कर रहा था। सभी सभासद व राजा संगीत का आनन्द लूट रहे थे। ठीक उसी समय चण्डमेघ दूत ने बिना सूचना दिए धृष्टापूर्वक राजसभा में प्रवेश किया। राजा ने उस दूत का स्वागत किया। संगीत और नृत्य का कार्यक्रम कुछ समय के लिए रोककर दूत का संदेश सुना। दरबार में बैठे

त्रिपृष्ट कुमार को रंग में भंग डालने की घटना से गहरा आघात लगा। उन्होंने अपने सेवकों को यह आदेश दिया कि जब दूत यहां से रवाना हो, तो हमें सूचित करना।

राजा ने प्रतिवासुदेव का संदेश सुनकर दूत को विदा किया।

उधर दूत बाहर आया। उसने शहर छोड़ा। जंगल में दोनों कुमारों ने दूत को खूब पीटा। दूत के बाकी साथी भाग गए।

जब प्रजापति को अपने पुत्रों द्वारा दूत के अपमान का पता चला, तो वह बहुत घबराया। बहुत से उपहार लेकर वह राजा अश्वग्रीव के दरबार में पहुंचा, पर तब तक सारा खेल बिगड़ चुका था। राजा अश्वग्रीव ने समझ लिया कि मेरा काल पैदा हो गया है। इन दोनों राजकुमारों को मरवाने में ही मेरा हित है।

उसने एक योजना बनाई। अश्वग्रीव ने तुङ्गग्रीव क्षेत्र में धान की खेती करवाई और फिर प्रजापति को आदेश भेजा-"यहां एक क्रूर सिंह ने आतंक मचा रखा है। उसने रक्षक तक को मार दिया है। पूरा ग्राम भय ग्रस्त है। अतः आप जाकर ग्रामीणों की रक्षा कीजिए।"

प्रजापति जब शालि क्षेत्र में जाने लगा तो पुत्रों ने विनय की- "हमारे होते आप जंगल में जाएं, यह अनुचित है। आपके इस छोटे से कार्य को हम पूरा करेंगे।"

प्रजापति अपने पुत्रों को भेजना नहीं चाहता था। पर दोनों पुत्रों ने पिता से जाने की अनुमति मांगी। बहुत आग्रह करने पर पिता ने बहुत सारे शस्त्र व सैनिकों के साथ पुत्रों को रवाना किया।

वे धान के खेतों में पहुंचे। वहां खेत-रक्षकों से पूछा- "राजा यहां किस प्रकार और कितने समय तक रहता है?"

खेत-रक्षकों ने कहा- "जब तक धान पक नहीं जाता, राजा चतुरंगिनी सेना के साथ इस क्षेत्र का घेरा डालकर रक्षा करता है।"

त्रिपृष्ट ने पूछा- "मुझे उस सिंह की गुफा बताओ, जहां आतंक मचाने वाला सिंह रहता है।"

ग्रामवासियों ने न चाहते हुए त्रिपृष्ट को गुफा का रास्ता बता दिया। रथ पर सवार सशस्त्र त्रिपृष्ट कुमार उस गुफा के समीप पहुंचा।

सिंह अंगड़ाई लेकर उठा। उसने सिंह-गर्जन किया। त्रिपृष्ट ने विचार किया- 'सिंह निहत्था है, मुझे भी शस्त्र रखकर सिंह का मुकाबला करना चाहिए।' उसने अपने शस्त्र फेंक दिए, रथ भी छोड़ दिया।

सिंह ने त्रिपृष्ट को देखा। त्रिपृष्ट ने सिंह को। सिंह त्रिपृष्ट कुमार पर कूद पड़ा। त्रिपृष्ट कुमार गुफा में प्रवेश कर चुका था। उसने सारथी व रथ बाहर खड़ा कर दिया था क्योंकि उसने सोचा था कि जब सिंह अस्त्र, शस्त्र व रथरहित है, तो मैं भी कायरता नहीं दिखाऊंगा। अकेले कुमार ने सिंह-गर्जना का अभूतपूर्व शौर्य से उत्तर दिया। उसने सिंह को जबड़ों से पकड़ा और पुराने वस्त्र की तरह चीर डाला। सिंह अब हार चुका था। उसके प्राण अटके हुए थे। पास में खड़े सारथी ने सिंह की इस दुर्दशा को देखा फिर सान्त्वना भरे स्वर में कहा- "हे वन के स्वामी! तुम पशुओं में सिंह हो, मेरा स्वामी मनुष्य में सिंह है। दो सिंहों की लड़ाई थी। किसी की विजय तो होनी थी। सो तू घबरा मत। यह तो जन्म मरण का चक्र है।" सिंह के प्रति कहे सारथी के शब्दों ने सिंह को सचमुच सान्त्वना प्रदान की, जिससे वह शान्त भव से प्राण त्याग सका।

त्रिपृष्ट कुमार सिंह-चर्म को लेकर जब गांव आए, सारा गांव उनके अभूतपूर्व साहस से धन्य-धन्य

कर उठा। उन्होंने अपने कृषकों से कहा- "उस घोटक ग्रीव से कह देना- अब निश्चिन्त रहे।"

जब अश्वग्रीव को कुमार की शौर्य-गाथा का पता चला, तो वह ईर्ष्या और भय की आग में जल उठा। उसने एक षड्यन्त्र रचा। उसने दोनों राजकुमारों को अपने यहां राजधानी में बुलाया। दोनों वहां नहीं गए।

इस बात से जल-भुनकर उस अश्वग्रीव ने पोतनपुर पर चढ़ाई कर दी। त्रिपृष्ट कुमार भी सैन्य-बल के साथ सामने आया। उसे नरसंहार अच्छा न लगा। "हमारी आपसी दुश्मनी में इन बेचारे सैनिकों का क्या दोष? अगर युद्ध करना है तो हम दोनों करेंगे।"-विश्वभूति ने यह प्रस्ताव अश्वग्रीव के सामने रखा।

अश्वग्रीव ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। दोनों में युद्ध हुआ। सभी शस्त्र-अस्त्र समाप्त हो गए, तो राजा ने चक्ररत्न फेंका। त्रिपृष्ट ने चक्ररत्न पकड़ लिया। उसी के चक्ररत्न से राजा का सिर छेदन कर डाला। तभी दिव्यवाणी से नभमण्डल गूंज उठा-"त्रिपृष्ट नामक प्रथम वासुदेव प्रकट हो गया है।"

यहां दिगम्बर उत्तरपुराण में विशाखनन्दी का जीव अश्वग्रीव प्रतिवासुदेव कहा गया है वहां सिंह का प्रसंग नहीं है। समय आने पर अश्वग्रीव को नष्ट कर वह त्रिपृष्ट वासुदेव बना। त्रिपृष्ट जहां योद्धा था, वहां क्रोधी भी था। उसके क्रोध के कारण उसे भगवान महावीर के भव में तपस्या काल में कई उपसर्ग आए। उदाहरण के लिए हम यहां एक प्रसंग दे रहे हैं-

त्रिपृष्ट वासुदेव को संगीत बहुत पसंद था। एक शाम उसके यह संगीतकार गाना गा रहे थे। संगीत मधुर था। त्रिपृष्ट के कानों को संगीत अच्छा लगा। उसने अपने सेवकों से कहा- "जब मैं सो जाऊं, संगीत बंद कर देना।"

शय्यापालक ने आज्ञा को ग्रहण किया। कुछ समय के बाद सम्राट की आंख लग गई। सम्राट् के सेवक संगीत की मस्ती में डूब गए। सुबह हो चुकी थी। राजा त्रिपृष्ट की आंख खुली। संगीत अब भी चल रहा था। राजा ने शय्यापालक से संगीत बन्द न करवाने का कारण जानना चाहा। सेवकों ने कहा- "संगीत इतना अच्छा था कि हम इसे छोड़ नहीं सकते थे। इस कारण संगीत चलता रहा।"

राजा को सेवकों की बात पर क्रोध आ गया। उसने आज्ञा की अवहेलना करने वाले शय्यापालक के कानों में पिघला शीशा उड़ेल दिया। बेचारा शय्यापालक भयंकर वेदना से तड़फने लगा। उसके प्राणों का अन्त हो गया। त्रिपृष्ट वासुदेव ने सत्ता के मद में बहुत से क्रूर कृत्य किये, जिसके कारण निकाचित कर्मों का बंधन किया। महारम्भ और महापरिग्रह करते हुए उसने ८४ लाख पूर्व वर्ष तक राज्य किया।

उन्नीसवां भव- सातवीं नरक

त्रिपृष्ट वासुदेव का जीव आयुष्य पूर्ण कर सातवें तमस्तमा नरक के अप्रतिष्ठान नरकावास में नैरयिक रूप में उत्पन्न हुआ।

बीसवां भव

वहां से मरकर वह केसरी सिंह बना। यह भव दिगम्बर ग्रन्थ उत्तरपुराण में उपलब्ध होता है। यह भयंकर सिंह किसी समय हिरण को पकड़कर खा रहा था। उस समय चारण लब्धिधारी मुनिराज पधारे। उन्होंने उच्च स्वर में उस जीव को धर्मोपदेश सुनाया और उसके त्रिपृष्ट के भव के पाप गिनाए, जिसके कारण वह सम्यक्त्व से भ्रष्ट हुआ था। जिसके परिणामस्वरूप उसे सिंह का जन्म मिला। मुनि की उद्घोषणा के कारण उस जीव को जातिस्मरण ज्ञान हो गया।

उत्तरपुराण का कर्त्ता कहता है- मुनिराज ने उसे पुरूरवा आदि समस्त भवों का बोध करवाया और कहा- ''मैंने यह भव-विवरण श्रीधर तीर्थंकर के मुख से सुना है, तू दस भव पूर्ण कर तीर्थंकर बनेगा।''

सिंह के जीव ने मुनि से तत्त्वचर्चा सुन श्रावक व्रत ग्रहण किए। वह मरकर सौधर्म स्वर्ग में सिंहकेतु देव बना। दो सागर की आयु भोगकर वह घातकीखण्ड के विदेह क्षेत्र में राजा कनकपुङ्ख और कनकमाला का पुत्र हुआ। एक बार वह अपनी पत्नी कनकवती के साथ महागिरि पर गया, वहां उसे प्रियमित्र मुनि के दर्शन-उपदेश का सौभाग्य मिला। उसने संयम ग्रहण कर लिया और सातवें स्वर्ग में उत्पन्न हुआ। वहां से देवलोक की आयु पूर्ण कर जम्बूद्वीप के कौशल देश की साकेत नगरी में राजा व्रजसेन और रानी शीलवती के यहां हरिषेण राजकुमार बना। यहां भी उसकी आत्मा जागृत थी। उसने मुनि श्रुतसागर से दीक्षा ली। आयु पूर्ण कर महाशुक्र देवलोक में १६ सागरोपम आयु वाला देव बना।

इन भवों की चर्चा श्वेताम्बर ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है।

इक्कीसवां भव- चौथी नरक

श्वेताम्बर ग्रन्थों के अनुसार सिंह का जीव मरकर चौथी नरक में गया। नरक से निकलने से पश्चात् उसने अनेक भव में तिर्यंच और मनुष्य के रूप में जन्म लिया। इन भवों की गिनती संख्या से बाहर है।

बाईसवां भव- मनुष्य का

सभी श्वेताम्बर ग्रन्थों में बाईसवां भव मनुष्य का है पर इन ग्रन्थों में नाम, आयुष्य, जीवन का प्रसंग नहीं मिलता है। ''महावीरचरियं'' में गुणचन्द्र ने इतना अवश्य बताया है कि इसी भव में तप-जप की साधना कर इस जीव ने चक्रवर्ती के योग्य पुण्य अर्जित किया। कल्पसूत्र में भी इस भव का वर्णन प्राप्त नहीं होता है। आचार्य विजयधर्मसूरि ने इस भव में पिता का नाम प्रियमित्र व माता का नाम विमला बताया है। स्वयं का नाम विमल कहा गया है। विमल संयम ग्रहण कर तप करता है। पर आचार्य जी ने यह प्रमाण कहां से लिया इसका उल्लेख नहीं किया है।

तेईसवां भव- प्रियमित्र चक्रवर्ती

इस भव की आयु पूर्ण कर नयसार का जीव महाविदेह क्षेत्र की मूका नगरी में धनंजय राजा की पत्नी रानी धारिणी के यहां पैदा हुआ। उसके यहां चक्ररत्न पैदा होने से उसने संसार के राजाओं को अपने अधीन किया। वह प्रियमित्र चक्रवर्ती बना। चक्रवर्ती का वैभव पाकर भी उसका मन वैराग्य में लगा हुआ था। वह आर्हत् वाणी का उपासक था।

उसका सौभाग्य था कि उसकी नगरी में पोट्टिलाचार्य पधारे। उसने प्रवचन सुना। दीक्षा ग्रहण की। नवाङ्गी टीकाकार अभयदेवसूरि ने उन्हें राजपुत्र माना है। समवायांग के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में इस भव के जीव का नाम प्रियमित्र है।

दिगम्बर आचार्य गुणभद्र ने मूका नगरी के स्थान पर पुण्डरीकिणी नाम दिया है और माता-पिता का नाम मनोरमा और सुमित्र बताया है। पोट्टिलाचार्य के स्थान पर भगवान क्षेमंकर के पास प्रियमित्र एक हजार राजाओं के साथ संयम ग्रहण करता है।

चौबीसवां भव- महाशुक्र

यहां से आयुष्य पूर्ण कर यह जीव महाशुक्र कल्प के सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुआ। उत्तरपुराण व समवायांगसूत्र के विमान का नाम सहस्रार आया है। यहां आयु किसी ग्रन्थ में १७ सागरोपम है और किसी में १८ सागरोपम है।

पच्चीसवां भव- नन्दन राजकुमार

यही भव था जिस भव में भगवान महावीर ने तीर्थंकर योग्य कर्म का उपार्जन किया। वह देवलोक की आयु पूर्ण कर क्षिप्रा नगरी के जितशत्रु सम्राट की भद्रा महारानी की कुक्षि से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम नन्दन रखा गया।

बचपन से राजकुमार वैराग्य मनोवृत्ति का था। वह दीन-दुःखियों का सहारा था। श्रमणों का सहज भक्त था। वह गुणों का भण्डार था। उसकी आयु २५ लाख वर्ष थी। एक लाख वर्ष तक उसने निरन्तर साधु-जीवन ग्रहण किया। उसके गुरु का नाम यहां भी पोट्टिलाचार्य था। समस्त एक लाख वर्ष के साधु-जीवन में उसने ११ लाख, ६० हजार मासखमण का तप कर कर्मों को खपाया। सेवा, स्वाध्याय व तप की त्रिवेणी उसके अन्दर बहती थी।

इसी जन्म में उसने तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन कर लिया। दिगम्बर परम्परा अनुसार महावीर के जीव ने इस भव में तीर्थंकर गोत्र के १६ बोल पूर्ण किए व श्वेताम्बर परम्परा में २० बोल, ऐसा वर्णन प्राप्त होता है। माता का नाम वीरमती तथा पिता का नाम नन्दिवर्धन है। उनका अपना नाम नन्द था। नन्दन मुनि के जीव ने इसी भव में एक मास की संल्लेखना धारण की।

छब्बीसवां भव- प्राणत देवलोक में

यहां से आयुष्य पूर्ण कर वह प्राणत देवलोक में पुष्पोत्तरावतंसक विमान में बीस सागर की स्थिति वाला देव हुआ। उत्तरपुराण के अनुसार अच्युत स्वर्ग में पुष्पोत्तर विमान में श्रेष्ठ इन्द्र बना, जहां उसकी आयु २२ सागरोपम थी।

सत्ताईसवां भव- ऋषभदेव ब्राह्मण के पुत्र रूप में

प्रायः लोग इसे भव नहीं गिनते। दिगम्बर परम्परा तो इसे भव मानती ही नहीं है।

नयसार से महावीर तक की यात्रा पूर्ण हो चुकी थी। श्वेताम्बर आगमों में इस बात का कई स्थानों पर स्पष्ट वर्णन उपलब्ध होता है। आचारांग, भगवती, कल्पसूत्र, मथुरा की प्राचीन मूर्तियों में इस भव का वर्णन है। बाद में हुए हर चरित्र लेखक ने इसका वर्णन किया है। श्वेताम्बर परम्परा में यह घटना अच्छेरा (अचम्भा) मानी जाती है। हम कल्पसूत्र के आधार पर इसका वर्णन करेंगे।

भगवान महावीर का जीव ग्रीष्म ऋतु के चतुर्थ मास, अष्टम पक्ष, आषाढ़ षष्ठी के दिन हस्तोत्तर नक्षत्र का योग आ जाने पर प्राणत देवलोक के दसवें स्वर्ग के पुष्पोत्तर प्रवर पुण्डरिक महाविमान से बीस सागर की आयु पूर्ण कर च्युत हुआ।

उसका जन्म जम्बूद्वीप के दक्षिण भरत क्षेत्र में स्थित ब्राह्मणकुण्ड ग्राम में प्रमुख वैदिक शास्त्रों के ज्ञाता कर्मकाण्डी कोडाल गोत्रीय ब्राह्मण ऋषभदेव व जालंधर गोत्रीय देवानन्दा के यहां हुआ। प्रभु के अवतरण से पूर्व देवानन्दा ने तीर्थंकर योग्य १६ स्वप्न या १४ स्वप्न देखे। यह जीव गर्भ में तीन ज्ञान का

धारक था।

पिता ने स्वप्न के आधार पर भविष्यवाणी की- ''बालक सुन्दर होगा। बड़ा होकर वेद, इतिहास, निघण्टु, गणितशास्त्र, ज्योतिष, व्याकरण, ब्राह्मण ग्रन्थ, परिव्राजक शास्त्रों में पारगंत होगा।''

स्वप्न का फल सुन माता प्रसन्नता से उछल उठी। पर देवानन्दा का यह सुख क्षण-भंगुर था। जब देवराज इन्द्र को यह सूचना मिली कि तीर्थंकर का जीव ब्राह्मणी देवानन्दा के यहां पल रहा है तो देव शक्रेन्द्र सोचने लगा-

तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि शूद्र, अधम, तुच्छ, अल्प कौटुम्बिक, निर्धन, कृपण, भिक्षु या ब्राह्मण कुल में उत्पन्न नहीं होते। वे तो राजन्य कुल में ज्ञात, क्षत्रिय, इक्ष्वाकु, हरिवंश में अवतरित होते हैं।

शक्रेन्द्र ने हरिणैगमेषी देव को बुलाया। गर्भ-परिवर्तन का आदेश दिया। यह सब क्यों घटित हुआ? एक छोटे से पूर्व जन्म के अभिमान के कारण कर्मबन्ध का फल था, जो नयसार के जीव ने राजकुमार मारीचि के भव में बांधा था। कर्मफल से न भगवान (महावीर) बच सकता है और न कोई जीव। इसी अहं के कारण उस जीव को ८२ रात्रि ब्राह्माणी के गर्भ में रहना पड़ा। हरिणैगमेषी देव ने दोनों माताओं को ८३वीं रात्रि में अवसर्पिणी निद्रा दी। गर्भ-परिवर्तन कर दिया।

तीर्थंकर महावीर का जीव क्षत्रियकुण्ड के नरेश राजा सिद्धार्थ की महारानी त्रिशला के गर्भ में स्थापित कर दिया गया। त्रिशला का गर्भ देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में स्थापित कर दिया गया। गर्भ के समय प्रभु तीन ज्ञान के धारक होने के कारण यह जानते थे।

आचार्य भद्रबाहु ने कल्पसूत्र में इस घटना का उल्लेख किया है- ''गर्भ संहरण से पूर्व यह होने वाला है, उन्हें ज्ञात था किन्तु ऐसा हो रहा है इस बात को वह नहीं जानते थे। संहरण के पश्चात् भी उन्हें ज्ञात था कि ऐसा हो चुका है, संहरण हो रहा है यह उन्हें ज्ञात नहीं था।'' पर दोनों माताओं को या किसी अन्य प्राणियों को इस घटना का पता नहीं था, क्योंकि देवों ने यह कार्य बहुत ही सूक्ष्म समय में कर डाला।

इस प्रकार नयसार के जीव को महावीर बनने में जन्म से पूर्व कई जन्मों में कितना संघर्ष करना पड़ा, इन भवों की कहानी इसी ओर संकेत करती है। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि जैन परम्परा ने कहीं भी महावीर को न अवतार माना है, न स्वर्ग से सीधा आया निष्कलंक जीव। उनको भी स्वयं कर्मफल भोगना पड़ा, वह भी तीर्थंकर के भव में। जैन इतिहास में ऐसी घटना पहले कभी नहीं हुई थी, सो इस घटना को आश्चर्यजनक माना गया। जैनदर्शन की एक बात ध्यान देने योग्य है कि कर्मफल में भगवान व इन्सान एक स्तर पर है। हम आगे देखेंगे कि कर्म के फल से कोई नहीं बच सका है।

इन्द्र द्वारा प्रभु की वन्दना

कल्पसूत्र के अनुसार जब इन्द्र को भगवान महावीर के देवानन्दा की कुक्षि में आगमन की सूचना मिली। उन्होंने अवधिज्ञान से देखा कि चरम तीर्थंकर का जन्म हो चुका है। उसको अभूतपूर्व प्रसन्नता हुई। वह अपने सिंहासन से नीचे उतरे। अपने भिन्न-भिन्न रत्नों द्वारा जड़ित पादुका उतारीं। फर्श पर बैठे। दुपट्टे को कंधे पर डालकर हथेलियों की अंजली बांधकर वर इन्द्रदेव सात-आठ कदम आगे बढ़े। बाएं घुटने को ऊंचा कर दाहिने घुटने को धररती पर टिकाकर तीन बार मस्तक से लगाया। फिर सीधे बैठ गए। तब दोनों हाथों को इस प्रकार समेटा कि कड़े और पहुंचे आदि आभूषण स्थिर व ध्वनिरहित हो गए।

दसों नाखून परस्पर जुड़ गए। इस प्रकार दोनों हथेलियों कि मिलाया। करबद्ध होकर उन हाथों को मस्तक से लगाकर भगवान की इस प्रकार स्तुति की-

"नमस्कार हो उन्हें, जो अरिहंत हैं, भगवंत हैं, आदिपुरूष हैं, तीर्थंकर हैं, स्वयंबुद्ध हैं, पुरूषोत्तम हैं, पुरुषसिंह हैं, पुरूषों में कमल की तरह हैं, पुरूषों में गंधहस्ति की तरह श्रेष्ठ हैं।"

"नमस्कार हो उन्हें, जो तीन लोकों में उत्तम हैं, लोकनायक हैं, लोकहितकारी हैं, लोकदीपक हैं, लोकप्रकाशक हैं, संसार के जीवों को अभयदान देने वाले हैं, ज्ञाननेत्र देने वाले हैं, मार्गदर्शक हैं, शरणदायक हैं, जीवनदायक हैं, बोध देने वाले हैं, धर्म देने वाले हैं, धर्म की देशना देने वाले हैं, धर्मनायक हैं, धर्मसारथी हैं।"

"नमस्कार हो उन्हें जो चार धातिया कर्मों के संहारक धर्म चक्रवर्ती हैं, भव समुद्र में द्वीप के समान हैं, प्राणदायक हैं, शरणदायक हैं, अवबोध और अवलम्ब देने वाले हैं, अप्रतिहत श्रेष्ठ ज्ञान व दर्शन के धारक हैं, छद्मावस्था से रहित हैं, जिन हैं, जिननायक हैं, पार उतर चुके हैं, तारक हैं, बुद्ध हैं, बोधदाता हैं, मुक्त हैं, मुक्तिदाता हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, शिवरूप हैं, अचल हैं, रोगरहित हैं, अनन्त हैं, अक्षय हैं, अपुनरावृत्तिरूप सिद्धगति नाम स्थान पर पहुंचे हुए हैं, अव्याबाध हैं। ऐसे जिनों को मेरा नमस्कार हो।"

"पूर्व में हुए तीर्थंकरों द्वारा कथित और पूर्व वर्णित सभी गुणों के धारक, सिद्धगति को प्राप्त करने की अभिलाषा करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले, अन्तिम तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर को मेरा नमस्कार है। 'यहां स्वर्ग में बैठा हुआ मैं देवानन्दा की कुक्षि में पल रहे भगवान को वन्दन करता हूं। प्रभु ! मेरा वन्दन स्वीकार करें।' यह कहकर इन्द्र प्रभु को वन्दना करते हैं, नमस्कार करते हैं और तब अपने सिंहासन के पूर्व की ओर मुख करके बैठते हैं।"

शक्रेन्द्र द्वारा की गई स्तुति में तीर्थंकर के बारे में जैनधर्म-दर्शन की मान्यता व श्रद्धा तो व्यक्त होती ही है, साथ में शकेन्द्र ने यह भविष्यवाणी भी की कि प्रभु महावीर पूर्व में हुए तीर्थंकरों के धर्म को बढ़ाने के लिए पैदा हुए हैं क्यों कि उस समय तक जिन तीर्थंकरों के धर्म को जनता भूल चुकी थी।

धर्म के नाम पर बेजुबान पशुओं की गर्दन पर आरे चलते थे। नरमेध, अश्वमेध आदि यज्ञों में हजारों पशुओं की बलियों का विधान था। इस व्यवस्था में पशुधन धर्म के नाम पर समाप्त हो रहा था। यह व्यवस्था मनुस्मृति, दूसरे धर्मशास्त्र, बाल्मीकि रामायण में देखी जा सकती है।

शक्रेन्द्र ने इस अज्ञान को मिटाने वाले जीव को नमस्कार किया है। प्रभु महावीर का जीवन क्रान्तिकारी जीवन था, ऐसा जीवन संसार में कम उपलब्ध है। यह क्रान्ति अहिंसा द्वारा समाज-व्यवस्था बदलने की थी, इसलिए वह महावीर कहलाए।

nn

---

१. (क) जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग ३, पृष्ठ ७१
(ख) प्राकृत साहित्य का इतिहास

२. भगवान महावीर : एक अनुशीलन, पृष्ठ १६८ (आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज)

३. आवश्यक निर्युक्ति

भगवान महावीरकालीन परिस्थितियां

आज से २६०० वर्ष पूर्व के भारतीय इतिहास को कोई विद्वान देखता है, तो हैरान हो जाता है कि भारतीय धर्म, समाज व संस्कृति इतने पतन के गड्ढे में गिर चुकी थी कि अनुमान लगाना कठिन है। शायद जिस कलियुग की बात हमारे पुराणों में है, उससे भी भयंकर स्थिति उस समाज की थी। उस सभ्यता को हम वैदिक सभ्यता कह सकते हैं, क्योंकि उसका आधार वेद थे। यह ब्राह्मण संस्कृति थी, क्योंकि उस समय वेद व ब्राह्मण समाज के हर क्षेत्र पर छाए हुए थे। उस समय के लोग उपनिषदों की क्रान्ति को पूर्णतः भूल चुके थे, जिन कार्यों का विरोध उपनिषदों ने किया था उसकी बात सुनने वाला, प्रचार करने वाला कोई महापुरुष नहीं था।

उपनिषदों की रचना २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के समय शुरू हुई थी। इसी कारण उपनिषदों पर भगवान पार्श्वनाथ की अहिंसा की मान्यता स्पष्ट दिखती है। आत्मा, परमात्मा, पुनर्जन्म के बारे में नए विचार जन्म ले चुके थे।

हमें इन बातों की चर्चा करने से पहले उस युग के इतिहास से गुजरना पड़ेगा। सर्वप्रथम धार्मिक क्षेत्र को लें, तो सूत्रकृतांगसूत्र में ३६३ और बौद्ध ग्रन्थों में ६३ मतों का विवरण उपलब्ध होता है। ये सभी मत अपनी-अपनी डफली, अपना-अपना राग की तरह एकान्तवादी थे। भगवान महावीर के समय में आस्तिकमत के साथ नास्तिक-चार्वाक, सांख्यमत भी घूम रहे थे। यहां हम उन मतों का वर्णन करेंगे, जो आज या तो समाप्त हो गए हैं या वैदिक परम्परा के भाग बन गए हैं। उस समय तीर्थंकर पार्श्वनाथ की श्रमण परम्परा भी छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। उनके कुछ ही अच्छे संत-साध्वी बचे थे।

आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज ने महावीर एक अनुशीलन पुस्तक में उस युग का सुन्दर विवेचन पृष्ठ २०६ में किया है। वह लिखते हैं-

" वैदिक दृष्टि से भी वह युग विचित्र परिस्थितियों में से गुजर रहा था। दार्शनिक चिन्तन का स्थान अन्धकार ने ले लिया था। धर्म-सम्प्रदायों की स्थिति बड़ी भ्रान्त थी। कटी हुई पतंग की तरह धर्म-जिज्ञासु मानव मन भटका हुआ था। चार्वाक के अनुयायी भौतिकता की पराकाष्ठा को जीवन का अन्तिम छोर मानते थे। कोई अक्रियावाद को मानता था। किसी का अघोष था कि अकर्मण्यता ही धर्म है, कोई क्षणिकवाद में धर्म मानकर मिथ्यावाद का खण्डन करता था, कोई मिथ्यावाद का समर्थन कर क्षणिकवाद का उपहास करता था। कोई नियतिवाद का समर्थन करता था, तो कोई उच्छेदवाद का, कोई अन्योन्यवाद को महत्त्व देता था, तो कोई विक्षेपवाद को। सभी अपने वैचारिक कटघरे में आबद्ध थे। स्वर्ग व नरक बिक रहे थे। अव्यवस्था, मनमानी और स्वेच्छाचार ने धर्म की पवित्रता, दर्शन की दिव्यता को खण्डित कर दिया था। इस प्रकार धर्म और दर्शन की अराजकता फैली हुई थी।"

समाज में जाति-भेद, छूआछूत हर स्तर पर छूत के रोग की तरह फैल चुका था। ब्राह्मण संस्कृति की मनमानियों के कारण क्षत्रिय राजाओं का उनकी आज्ञा को धर्म मानकर चलना था। लम्बे समय के यज्ञ होते थे। यज्ञ में अन्य सामग्री के साथ धन, उपयोगी पशुओं व मानवों की बलियां दी जाती थीं। उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र वर्ण-व्यवस्था पर समाज आधारित था।

उस समय यह श्रुति आम थी- भगवान ने यज्ञ के लिए पशुओं की रचना की है। वेद में वर्णित हिंसा, हिंसा नहीं। ये सब कार्य देवताओं को प्रसन्न करने व स्वर्ग प्राप्ति के लिए किए जाते थे।

ब्राह्मण चाहे विद्वान हो या मूर्ख, सदाचारी हो या व्यभिचारी, अग्नि की तरह सदा पूजनीय व पवित्र है।[3] पाण्डे व पुरोहित लोगों के भाग्य के निर्माता बन गए थे। ब्राह्मणों के अधिकार इतने विस्तृत हो गए थे कि वह शूद्र के धन के स्वामी भी हो गए। ब्राह्मण ब्रह्मामुख के समान पवित्र माना जाता था।

वेद का ज्ञान देना, पढ़ना ब्राह्मण का अधिकार था। शूद्र लोगों को न वेद पढ़ने का अधिकार था, न उन्हें वेद सुनने का। शूद्रों की तरह स्त्री को भी वेद पढ़ने का अधिकारी नहीं माना जाता था।[4] यदि शूद्र कभी भूल से वेद का पाठ सुन लेता तो उसके कानों में गरमागरम सीसा पिघलाकर डाला जाता था। यदि वह कण्ठस्थ कर लेता, तो उसे बुरी तरह मारा जाता था। वेद के ऋचा बोलने वाले शूद्र की जीभ काट दी जाती। उन्हें यज्ञ-प्रसाद ग्रहण करने व व्रतादि का उपदेश देना मना था।

स्त्री व शूद्र दोनों स्वतन्त्रता के योग्य नहीं थे। दासों व स्त्रियों की मण्डियां लगती थीं। उस समय यह घोष आम था-

''न स्त्रीस्वातंत्र्यमर्हति। अस्वतन्त्रा स्त्री पुरुषप्रधान।''

इन दोनों को धार्मिक व सामाजिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया था। बोधायन स्मृति २/२/५२ में कहा गया है।

''बचपन में पिता, विवाह के पश्चात् पति व वृद्धावस्था में पुत्रों के संरक्षण में रहकर स्त्री को जीवन व्यतीत करना चाहिए।'' सारा स्मृति साहित्य शूद्रों की करूण गाथा का वर्णन है।

गीता ९/३२ में श्रीकृष्ण ने कहा है-

''स्त्रियां, वैश्य और शूद्र सब पाप योनि हैं, पापजन्य हैं।'' इनके संस्कार बिना मंत्र के किए जाते थे ताकि मंत्र अपवित्र न हो जाएं।''

राजनैतिक स्थिति

राजनैतिक क्षेत्र में दो तरह की व्यवस्थाएं थीं- गणराज्य व राजतन्त्र। भगवान महावीर के नाना चेटक (या मामा) वैशाली गणराज्य के प्रमुख थे। इसके अतिरिक्त लिच्छवी गणराज्य के शाक्य, कौशल, आमलकप्पा, वज्रिगण, पिप्पलि वन, मोरीय गण छोटे गणराज्य थे।

इनके अतिरिक्त कोशल, वत्स, अवन्ती, कलिंग, अंग, वंग आदि स्वतन्त्र राज्य थे। गणराज्यों में परस्पर स्नेह था। उत्तराध्ययनसूत्र २३/७५ में फरमाया है। ''आज चारों ओर अंधकार है। भोलीभाली जनता अंधकार में भटक रही है। इस काल-रात्रि का कब अंत होगा और कौन सा सूर्य इस क्षितिज पर प्रकाश बिखेरगा? संसार को धर्मतत्त्व से कौन आलोकित करेगा? यह चिन्ता का विषय है।'' यह बात प्रभु महावीर के प्रथम शिष्य इन्द्रभूति गौतम को केशी श्रमण ने कही थी।

उस समय भारत में ही नहीं, समस्त विश्व में व्यवस्था डांवाडोल थी। धरती महापुरुष की बाट जोह रही थी। ऐसे समय में भारत की धरा पर बुद्ध व महावीर पैदा हुए। चीन में लाओत्से, कन्फ्यूशियस, यूनान में पाईथागोरस, अफलातून और सुकरात, ईरान में जरतुस्थ, फिलिस्तीन में जिरेनिया और इजकिल[5] पैदा हुए।

दार्शनिक मत

यह समय ऐसा था जब भारत की धरती पर अनेक दर्शन व दार्शनिकों का जन्म हुआ। ये मत स्वमत की प्रशंसा कर दूसरे की निन्दा करते थे। धार्मिक वातावरण हर स्तर पर बिगड़ा हुआ था। उस

समय की धार्मिक मान्यताओं को सूत्रकृतांगसूत्र में ४ समवसरण का नाम भगवान महावीर ने दिया है। इनके नाम हैं -(१) क्रियावाद, (२) अक्रियावाद, (३) विनयवाद, (४) अज्ञानवाद।

(१) क्रियावाद

क्रियावाद आत्मा के साथ क्रिया का सम्बन्ध मानते हैं। उनका सिद्धान्त है कि कर्त्ता के बिना पुण्य-पाप क्रिया नहीं होती। वे जीव आदि नव तत्त्वों को एकान्त रूप में मानते हैं। इनके १८० भेद हैं।

(२) अक्रियावाद

अक्रियावादियों का वर्णन दशाश्रुतस्कन्ध की छठी दशा[६] में उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त सूत्रकृतांग में भी इनका वर्णन है। इनकी मान्यता है कि पुण्य-पाप आदि क्रिया स्थिर लगती है, पर उत्पन्न होते ही विनाश होने से कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं। तब इसे क्रिया कैसे लगे। वस्तु में नित्य-अनित्य भेद नहीं। इनके ८४ भेद हैं। इनकी मान्यता है-

"इहलोक नहीं, परलोक नहीं, माता नहीं, पिता नहीं, अरिहंत नहीं, चक्रवर्ती नहीं, बलदेव नहीं, वासुदेव नहीं, नरक नहीं, नारकी नहीं, अच्छे बुरे का फल में अन्तर नहीं। अच्छे कर्म का फल अच्छा, बुरे कर्म का फल बुरा नहीं होता। कल्याण और पाप अफल हैं, पुनर्जन्म नहीं, मोक्ष नहीं। सभी क्रिया फल शून्य हैं।"

(३) अज्ञानवाद

अज्ञानवाद का मानना है- "सारे झगड़े ज्ञान के कारण होते हैं। किसी को पूरा ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। सारे मत ज्ञान से पैदा हुए हैं। ज्ञान अर्जित करना व्यर्थ है। अज्ञान से जगत् का कल्याण है।"

सूत्रकृतांग में अज्ञानवाद के ६७ भेद कहे गए हैं।

(४) विनयवाद

विनयपूर्वक व्यवहार करने वाले विनयवादी कहलाते हैं। वे हर स्थान पर, बिना किसी विलम्ब के सब की विनय करते हैं। चाहे साधु मिले, गृहस्थ मिले, गाय मिले या कुत्ता मिले, सब की विनय करना विनयवादी का धर्म है। इन सबको वे मन, वचन व कर्म से देश और काल के अनुसार उचित मान देकर धर्म का पालन करते हैं। इनके ३२ भेद हैं।

जैन ग्रन्थों में इन वादों के संस्थापकों के नाम तो आए हैं, पर उनका विवरण प्राप्त नहीं होता। निशीथचूर्णि में इन धर्म-मतों की संख्या में बढ़ोत्तरी मिलती है। तत्त्वार्थराजवार्तिक में इन वादों की भाषाओं के नाम उपलब्ध होते हैं।

छह धर्मनायक

बौद्ध ग्रन्थों में छह धर्मनायकों का बार-बार उल्लेख आया है। उनके बारे में संक्षिप्त वर्णन इसलिए जरूरी है क्योंकि इनमें [५] अधिकांश की मान्यता इतिहास से समाप्त हो चुकी है।

पूर्ण काश्यप व उनकी मान्यता

यह काश्यप जाति के ब्राह्मण थे। प्रायः नग्न रहते थे। इनके अनुयायियों की संख्या ८०,००० थी। एक दिन राजा ने उन्हें द्वारपाल का कार्य सौंप दिया, जिसे इन्होंने अपना अपमान समझा। वे गुस्से में

अपमानित हो जंगल में निकल पड़े, जहां चोरों ने इनके वस्त्र छीन लिए। तब से इन्हें लोगों ने वस्त्र भी दिए, पर इन्होंने कहा-''वस्त्र लज्ञा को ढकने के लिए है और लज्जा का मूल पापमय प्रवृत्ति है। मैं तो इन प्रवृत्ति से दूर हूं। इसलिए मुझे वस्त्रों से क्या प्रयोजन?''

ये अक्रियावाद के समर्थक थे। उनका मानना था- ''अगर कोई कुछ करे या कराए, काटे या कटवाए, कष्ट दे या दिलाए, शोक करे या कराए, किसी को कुछ दुःख हो या कोई दे, डर लगे या डराए, प्राणियों को मार डाले, घर में सेंध लगाए, डाका डाले, एक ही मकान पर डाका डाले, लूटमार करे, परदार गमन करे, असत्य बोले तो भी पाप नहीं लगता। तीक्ष्ण धार वाले चक्र से यदि कोई इस संसार के पशुओं को मारकर मांस का ढेर लगा दे, तो भी उनको पाप नहीं है। इसमें कोई दोष नहीं। गंगा नदी के दक्षिणी किनारे पर जाकर यदि कोई मार-पीट करे, काटे या कटवाए, कष्ट दे या दिलाए तो भी उसमें पाप नहीं।

गंगा नदी के उत्तरी किनारे पर जाकर कोई दान करे, यज्ञ करे या करवाए, तो भी उसमें कोई पुण्य नहीं मिलता। दान, संयम, धर्म और सत्य में कोई पुण्य नहीं है।''

मंखलि गोशालक और उसकी मान्यता

गोशालक भगवान महावीर से बहुत समय सम्पर्क में रहा। इस संदर्भ में सूत्रकृतांग, भगवती, उपासकदशांग आगमों में विवरण प्राप्त होता है। भगवान महावीर के साधनाकाल में वह ५ वर्ष तक साथ रहा। पर बाद में उसने अलग मत चलाया उसका मन्तव्य था कि ''प्राणी के अपवित्र होने में न कुछ हेतु है, न कारण। शुद्धि के लिए हेतु भी कोई नहीं है, कुछ भी कारण नहीं है। बिना हेतु और बिना कारण के ही प्राणी शुद्ध होते हैं। निज शक्ति या दूसरे की शक्ति से कुछ नहीं होता। बल, वीर्य, पुरूषार्थ या पराक्रम यह सब कुछ नहीं है। सब प्राणी बलहीन और निर्वीर्य हैं- वे नियति (भाग्य), समय और स्वभाव के द्वारा परिणत होते हैं।''[८] इस नियतिवाद को आजीवक मत भी कहा गया है।

बौद्ध ग्रन्थों में भी मंखलि-पुत्र का स्थान-स्थान पर वर्णन आया है। वह भगवान महावीर व बुद्ध का मुख्य विरोधी था। जैन परम्परा के अनुसार वह तेजोलेश्या का स्वामी था। उसके भक्तों की गिनती लाखों में थी।

अजित केशकम्बली और उनकी मान्यता

यह केशों के बने कम्बल के वस्त्र पहनता था। इसकी विचारधारा लोकायत मत के समान थी। कई लोग इसे नास्तिक मत मानते थे। उनका मत था- दान, यज्ञ, होम तथ्यहीन हैं। श्रेष्ठ और कनिष्ठ कर्म का फल और परिणाम नहीं है। इहलोक, परलोक, होम, माता-पिता, देवता, नरक आदि कुछ नहीं है। इनका ज्ञान देने वाले श्रमण इस संसार में नहीं हैं। यह शरीर चार धातुओं का बना है। ये धातु जब समाप्त हो जाते हैं, मृत्यु हो जाती है, मिट्टी में मिल जाते हैं। आस्तिकवाद बकवास है। इस सिद्धान्त का नाम उच्छेदवादी था।

प्रकुध कात्यायन और उनके सिद्धान्त

आचार्य बुद्धघोष ने लिखा है- प्रकुध उसका नाम था, कात्यायन गोत्र था। वह अन्योन्यवादी था। उसका मत था- ''सात पदार्थ किसी के लिए करवाए, बनाए या बनवाए हुए नहीं वे बन्ध्य कूटस्थ और नगर-द्वार के स्तम्भ की तरह अचल हैं। वे न हिलते हैं, न बदलते हैं। एक दूसरे को सताते नहीं हैं। एक

दूसरे को सुख-दुःख उत्पन्न करने में असमर्थ हैं। वे हैं -पृथ्वी, अप्, तेउ, वायु, सुख, दुःख व जीव। इन्हें मारने वाला, सुनने वाला, सुनाने वाला, जानने वाला कोई नहीं है। अगर कोई तीक्ष्ण शस्त्र से किसी का सिर काट डालता है तो वह उसका प्राण नहीं लेता। इतना ही समझना चाहिए कि सात पदार्थ के बीच अवकाश में शस्त्र घुस गया है।''

संजयवेलट्ठि पुत्र व उसकी मान्यता

इसका नाम छह बोल के साथ आया है। पर इसके बारे में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। वह विक्षेपवादी था। उसका मत था- ''यदि कोई मुझे पूछे कि क्या परलोक है और मुझे ऐसा लगे परलोक है तो मैं कहूंगा, हां।''

'' परन्तु मुझे वैसा नहीं लगता, मुझे ऐसा भी नहीं लगता कि परलोक नहीं है। औपपातिक प्राणी है या नहीं। अच्छे बुरे कर्म का फल होता है या नहीं। तथागत मृत्यु के बाद रहता है या नहीं। इनमें से किसी भी बात के विषय में मेरी कोई निश्चित धारणा नहीं है।''

निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र का चातुर्याम मार्ग

बौद्ध ग्रन्थों में अनेक प्रकरणों में भगवान महावीर का वर्णन ज्ञातपुत्र के रूप में आया है। ज्ञातृ प्रभु महावीर का वंश था जो लिच्छवियों की शाखा थी। राजा सिद्धार्थ इस वंश के राजा थे।

ज्ञातवंशी क्षत्रिय भगवान पार्श्वनाथ के उपासक थे। ज्ञातपुत्र भगवान महावीर नाम था। उनका धर्म निर्ग्रन्थ धर्म था।

उत्तराध्ययनसूत्र में केशी-गौतम संवाद में भगवान पार्श्वनाथ के मार्ग को चातुर्याम मार्ग बताया गया है। वहां लिखा है-

''प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के मुनि व साध्वियां पांच महाव्रत का पालन करती हैं। पर २ से २३वें तीर्थंकर के मुनि चार महाव्रतों का पालन करते थे।''

यहां ४ व्रतों में ब्रह्मचर्य को अपरिग्रह महाव्रत का अंग माना गया है। इस कारण इस धर्म को चातुर्याम मार्ग कहा जाता है।

भगवान महावीर का जन्म धरती का सौभाग्य था। करोड़ों वर्षों से मानव जाति आपका इन्तजार कर रही थी। वह मनुष्य से परमात्मा के रूप में अपनी लीला दिखाने धरती पर प्रकट होने वाले थे। इस काल का चतुर्थ आरा भी समाप्त होने वाला था। अन्तिम तीर्थंकर के आगमन की सूचना जैन परम्परा में शुरू से चली आ रही थी। भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के भिक्षु व भिक्षुणियां इस बात को जानते थे कि २४वां तीर्थंकर 'वर्द्धमान' नाम से पैदा होगा। ⊓⊓

---

१. मनुस्मृति ५/२८/३६
२. वही ५/२२/४४
३. वही ८/३१७-३१९
४. (क) गौतम धर्मसूत्र, पृष्ठ १६५
   (ख) अध्ययन ३, पृष्ठ ८९-९०
५. महावीर : एक अनुशीलन, पृष्ठ २/२
६. **नास्तिकवादी : नास्तिकप्रज्ञ, नास्तिकदृष्टि, नोसम्यक्त्वादी, नोनित्यवादी, उच्छेवादी, स्व-पर लोकवादी।**
७. (क) भारतीय संस्कृति और अहिंसा, पृष्ठ ४५-४६
   (ख) भगवान बुद्ध, पृष्ठ १४
८. (क) भारतीय संस्कृति और अहिंसा, पृष्ठ ४५-४६
   (ख) भगवान बुद्ध, पृष्ठ १८१-१८३

महावीर का जन्म-महोत्सव, बचपन, विवाह व संकल्प

(प्रभु महावीर का धरती पर जन्म)

रानी त्रिशला का स्वप्न दर्शन

बिहार देश के अन्तर्गत क्षत्रिय कुण्डग्राम में भगवान पार्श्वनाथ की श्रमण परम्परा के उपासक राजा सिद्धार्थ राज्य करते थे। उनकी रानी त्रिशला वैशाली नरेश चेटक की पुत्री थीं।

त्रिशला ने पूर्व वर्णित १४ स्वप्न देखे।[1] उन स्वप्नों को देखकर रानी जागृत हुई। वह अपने पति के कक्ष में आई। वह प्रसन्नचित्त थीं। उसने राजा से अपने स्वप्नों का वर्णन किया। राजा ने कहा-"देवी! तुमने कल्याणकारी स्वप्न देखे हैं। इनके फलस्वरूप हमें अर्थ, भोग, पुत्र व सुख की प्राप्ति होगी और राज्य में भी अभिवृद्धि होगी। कोई महान आत्मा का जन्म होगा।"[2]

सिद्धार्थ राजा के मुख से स्वप्न का फल सुन रानी संतुष्ट हुई। राजा के पास से उठकर वह अपने शयनागार में आईं। मांगलिक स्वप्न कहीं निष्फल न चले जाएं, एतदर्थ शेष रात्रि अध्यात्म जागरण में व्यतीत की।[3]

सुबह को राजा सिद्धार्थ उठे। उन्होंने प्रातःकाल के कार्य सम्पन्न किए। वह सर्वप्रथम व्यायाम शाला में गए, वहां उन्होंने विभिन्न प्रकार की व्यायाम-क्रिया सम्पन्न की। शस्त्राभ्यास, व्यायाम, मल्लयुद्ध और पद्मासन आदि आसन किए। थकान मिटाने के लिए शतपाक और सहस्रपाक तेल की मालिश करवाई फिर स्नान किया। गोशीर्ष चन्दन का विलेपन किया। फिर सुन्दर वस्त्र आभूषणों से शरीर को सुसज्जित किया। सुसज्जित होकर सभाभवन में आए। राजा सिद्धार्थ ने रानी त्रिशला के सभाभवन में बैठने की स्वतन्त्र व्यवस्था करवाई। उन्होंने बीच में बड़ा परदा लगवाया। रत्नजड़ित भद्र आसन लगवाए।

फिर राजा ने कौटुम्बिक पुरुष (नौकर) को आदेश दिया कि अष्टांग निमित्त के ज्ञाता स्वप्न-पाठकों को राज्यसभा में आमन्त्रित किया जाए। कौटुम्बिक पुरुष स्वप्न-पाठकों की बस्ती में गए। उनके मुखिया को राजा का संदेश सुनाया। इस संदेश व निमन्त्रण से सारी बस्ती में खुशी छा गई। स्वप्न-पाठकों ने सभाभवन में जाने योग्य वस्त्र पहने, पुस्तकें साथ लीं और राजा सिद्धार्थ के महलों की ओर चल पड़े।

स्वप्न-पाठकों द्वारा फलादेश

स्वप्न-पाठक राजप्रासाद में आए। उन्होंने राजा सिद्धार्थ को विधि सहित प्रणाम किया। राजा ने उनका अभिवादन स्वीकार करते हुए रानी त्रिशला के द्वारा देखे १४ स्वप्नों का फल पूछा।[4]

सभी स्वप्न-पाठकों ने आपस में विचार-विमर्श किया। वे यह जानते थे कि राजा के सामने सोच-समझकर बोलना चाहिए। इसी विधि का पालन करते हुए उन्होंने रानी द्वारा देखे स्वप्नों का विश्लेषण किया। ग्रन्थों से उसका मिलान किया फिर कहा- हे राजन्! हमारे स्वप्न-शास्त्र में ४२ स्वप्न सामान्य फल देने वाले और ३० स्वप्न उत्तम फल देने वाले महास्वप्न कहे गए हैं। इस प्रकार कुल ७२ स्वप्न हैं। तीर्थंकर और चक्रवर्ती की माताएं इनमें से १४ शुभ स्वप्न देखती हैं।[5] वासुदेव की सात, [6]बलदेव की

चार,[७] माण्डलिक राजा की माता एक[८] स्वप्न देखती हैं।''

आपकी महारानी ने १४ स्वप्न देखे हैं। इससे अर्थ-लाभ, पुत्र-लाभ, सुख-लाभ और राज्य लाभ होगा। नौ मास और साढ़े सात अहोरात्रि व्यतीत होने पर कुलवंत, कुलदीपक, कुलकिरीट, कुलतिलक, सर्वाङ्ग सुन्दर चन्द्र के समान योग्य आकृति वाला, कान्त प्रियदर्शी और सुरूप पुत्र को वह जन्म देगी। वह पुत्र लक्षणों और व्यंजनों से युक्त होगा। शैशव समाप्त कर परिपक्व ज्ञान वाला होगा, जब वह यौवन में प्रवेश करेगा तो दानवीर, पराक्रमी और चारों दिशाओं का अधिशास्ता, चक्रवर्ती या चार गति का अन्त करने वाला तीर्थंकर होगा।

महारानी त्रिशला के स्वप्नों का फल इस प्रकार है

	स्वप्न	फल
(१)	गज	वह चार प्रकार के तीर्थ साधु, साध्वी, श्रावक व श्राविका की स्थापना करेगा।
(२)	वृषभ	बोधिबीज वपन करेगा।
(३)	सिंह	वह सिंह की भांति कामवासना का नाश कर संसार में भटकते प्राणी की रक्षा करेगा।
(४)	लक्ष्मी	वह एक वर्ष दान करके तीर्थंकर पद प्राप्त करेगा।
(५)	पुष्पमाला	वह त्रिलोक पूज्य होगा। सब लोग उसकी चरण-धूल मस्तक पर धारण करेंगे।
(६)	चन्द्रमा	वह चन्द्रमा के समान शीतल, क्षमा और धर्म को धरती पर फैलाएगा।
(७)	सूर्य	वह अज्ञानरूपी अंधकार का नाश करेगा।
(८)	ध्वजा	वह धर्म-ध्वजा संसार में फैलाएगा।
(९)	कलश	वह धर्मरूपी प्रसाद पर कलश की तरह सुशोभित होगा।
(१०)	पद्मसरोवर	उसके लिए देवता स्वर्ण कमल का आसन निर्मित करेंगे।
(११)	समुद्र	वह समुद्र की तरह अनन्त ज्ञान दर्शन रूप मणि का धारक होगा।
(१२)	विमान	वह वैमानिक देवों द्वारा पूजित होगा।
(१३)	निर्धूम अग्नि	वह धर्मरूपी सुवर्ण को शुद्ध व निर्मल करने वाला होगा।
(१४)	रत्नराशि	वह वैभव सम्पन्न होगा।

आचारांगसूत्र में स्वप्न पाठकों का वर्णन नहीं। उत्तरपुराण में स्वप्न का फल राजा स्वयं बताता है।

मातृ-भक्त प्रभु महावीर

भगवान महावीर का जीव गर्भ में था, तो वह तीन ज्ञान का धारक था। उसने सोचा-मेरे हिलने-डुलने से मेरी माता को कष्ट होता है। मुझे इसमें निमित्त नहीं बनना चाहिए। यह सोचकर वह निश्चल हो गए। हिलना-डुलना बन्द कर दिया, अकम्प बन गए। सारे अंगों को सिकोड़ लिया।

इस बात से माता त्रिशला को बहुत चोट पहुंची। उसने सोचा- क्या किसी देव ने मेरा गर्भ का अपहरण कर लिया है? क्या वह मर गया है? क्या वह गल गया है? विविध आशंकाओं से त्रिशला को हृदयघात पहुंचा। वह रोने लगी, फिर इसी गम में मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। परिचारिकाओं ने उपचार

किया। फिर रानी से उनकी अस्वस्थता का कारण पूछा। रानी ने अपने गर्भ के जीव की क्रिया के बारे में बताया- "मेरा गर्भस्थ जीव न हिलता है न डुलता है, उसका स्पन्दन भी बन्द हो गया है।"

यह सुनकर महल में कोलाहल मच गया। घर में दास-दासी रानी के गर्भस्थ जीव की कुशलता मांगने लगे। महाराजा सिद्धार्थ स्वयं पधारे। उन्होंने ज्योतिषियों से इसका कारण पूछा।

कुछ समय के पश्चात् महावीर के जीव ने हिलना-डुलना शुरू किया। माता के चेहरे पर मुस्कराहट दौड़ आई। यह घटना महावीर के गर्भ में आने के साढ़े छह महीने की है।

इस घटना का महावीर के जीव पर गहरा असर हुआ। अभी तो मैं गर्भ में हूं। मां ने मेरा मुंह नहीं देखा, फिर भी माता को मेरे प्रति इतना मोह है। जब मैं उनके जीवनकाल में साधु बनूंगा तो कितना दुःख होगा। यही सोच भगवान ने गर्भ में प्रतिज्ञा धारण की।

इस घटना का वर्णन कल्पसूत्र, आवश्यकचूर्णि, चउपन्नमहापुरिसचरियं, महावीरचरियं, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, विशेषावश्यकभाष्य में उपलब्ध होता है। पर आचारांग, आवश्यकनिर्युक्ति, पउमचरियं व दिगम्बर ग्रन्थों में इसका वर्णन नहीं मिलता है।

इस प्रकार रानी त्रिशला ने महावीर के जीव को वात्सल्य भाव से पाला। जब भगवान का जीव गर्भ में आया। धन-धान्य की वृद्धि होने लगी। शक्रेन्द्र के आदेश से वैश्रमण जृम्भक देवों के द्वारा अटूट धन राजा सिद्धार्थ के भण्डार में पहुंचाया गया। गर्भ-धारण के ६ मास पूर्व ही देवगण ने तीर्थंकर के माता-पिता के राजप्रासाद पर रत्नों की वृष्टि करनी शुरू कर दी।

रानी त्रिशला का दोहद

गर्भ के समय माता त्रिशला को कई दोहद (गर्भकालीन इच्छा) उत्पन्न हुए जैसे कि मैं अपने हाथों से दान दूं। सद्गुरु को आहार प्रदान करूं। देश में अमारि की घोषणा करवाऊं। समुद्र, चन्द्र और पीयूष का पान करूं, उत्तम वस्त्र धारण करूं।

कल्पसूत्र की कल्पलता वृत्ति के अनुसार त्रिशला रानी को यह दोहद उत्पन्न हुआ कि मैं इन्द्राणी के कुण्डल पहनूं। यह दोहद पूरा होना असम्भव था। दोहद पूरा न होने के कारण वह दुःखी रहने लगी। इन्द्र का आसन कम्पित हुआ। उसने अवधिज्ञान से जाना। अपनी शक्ति से दिव्य नगर का निर्माण पर्वत पर किया। वह वहां सपरिवार रहने लगा। राजा सिद्धार्थ को ज्ञात होने पर वह ससैन्य इन्द्र के पास आया और कुण्डलों की याचना की। इन्द्र ने उन कुण्डलों को देने से इन्कार कर दिया। दोनों राजाओं में युद्ध हुआ। इस युद्ध में इन्द्र जानबूझकर हार गया। किले पर सिद्धार्थ का अधिकार हो गया। इन्द्राणी के कानों में कुण्डल छीनकर रानी का दोहद पूरा हुआ।

जन्म और उत्सव

श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है - मासानां मधुमासोस्मि- मैं महीनों में माधव मास-चैत्र हूं और ऋतुओं में बसन्त।

आज से २६०६ वर्ष पूर्व इसी तरह का मास था। भारत में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव, पवन पुत्र हनुमान भगवान राम व भगवान महावीर का जन्म इसी मास में हुआ था।

कल्पसूत्र में आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने कहा है- नौ महीने साढ़े सात दिन पूर्ण होने पर हस्तोत्तरा नक्षत्र के योग में त्रिशला क्षत्रियाणी ने आरोग्य पुत्र को जन्म दिया। वह देवताओं की भांति जरायु-रुधिर व मल से रहित थे। उनके जन्म पर सारा संसार प्रकाश से जगमगा उठा था। शीतल, मन्द, सुगन्धित,

दक्षिण पवन चल रहा था। सभी दिशाएं शान्त और विशुद्ध थीं। शकुन जय-विजय के सूचक थे।

देवों द्वारा जन्म- महोत्सव

भगवान महावीर के जन्म के समय छप्पन दिककुमारियां अपनी परम्परा अनुसार सूतिका कर्म हेतु आईं। उन्होंने जन्म-महोत्सव मनाया और अपने स्थान पर चली गईं।

भगवान महावीर का जन्म होते ही शक्रेन्द्र का सिंहासन कम्पित हुआ। उसने अवधिज्ञान से देखा- भगवान महावीर का जन्म हो गया है। वह बहुत प्रसन्न हुआ। वह अनेक देव-देवियों के परिवार के साथ क्षत्रियकुण्ड ग्राम में आया। उसके साथ भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष और वैमानिक देव एवं उनके इन्द्र और देवगण भी आए। सब देवों में होड़ लग गई।

सर्वप्रथम शक्रेन्द्र ने भगवान को और माता त्रिशला को तीन बार प्रदक्षिणा कर नमस्कार किया। महावीर का के प्रतिबिम्ब बनाकर माता के पास रखा। अवस्वपिनी निद्रा में माता को सुलाकर महावीर को मेरू पर्वत के शिखर पर ले गए। इसी तरह से मिलता जुलता वर्णन आचारांगसूत्र में भी उपलब्ध होता है।

आचार्य भद्रबाहु स्वामी के कल्पसूत्र व उसकी टीकाओं में इस घटना का सुन्दर उल्लेख हुआ है।

जब सभी देव-देवियां अपने विमानों सहित इकट्ठे होने लगे, स्वर्ग में घण्टे बजने लगे, अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर ने जन्म ले लिया है, ऐसी घोषणाएं होने लगीं। सभी देव-देवी अपने विमानों में इकट्ठे होकर भगवान महावीर का जन्म-महोत्सव मनाने लगे।

इस प्रकार ईसा से 511 वर्ष पूर्व चैत्र सुदी त्रयोदशी को क्षत्रिय कुण्डग्राम में प्रभु का जन्म रानी त्रिशला व पिता राजा सिद्धार्थ के यहां हुआ। देव-दुन्दुभियां बजने लगीं। देवता इसी जोश में भगवान महावीर को मेरू पर्वत पर ले आए। अब उनका प्रथम स्नान देवी-देवताओं द्वारा भिन्न भिन्न द्रव्यों से होना था।

मेरू कम्पन

इन्द्र ने अपने पांच रूप बनाए। इन्द्राणी ने बालक गोद में ग्रहण किया। देवताओं के मन में शंका पैदा हुई कि कुछ ही घड़ी पहले जन्मा बालक इस जल-स्नान के कलशों से डाले जल बिन्दुओं को कैसे झेलेगा? परन्तु प्रभु महावीर तो अवधिज्ञानी थे। अवधिज्ञान के बल पर उन्होंने इन्द्र को चमत्कार दिखाया। चमत्कार तो चमत्कार होता है। तीन काल में कभी कितने भूचाल आए, मेरू पर्वत किसी स्थिति में नहीं कांपता। पर आज मेरू पर्वत का सौभाग्य था। इन्द्र की शंका को दूर करने के लिए प्रभु ने पांव का सबसे छोटा अंगूठा मेरू पर्वत को लगाया। सारा मेरू पर्वत प्रभु की शक्ति के आगे कांपने लगा। मात्र पांव के अंगूठे के स्पर्श से यह सब हुआ। सभी देवों को अपनी भूल का ज्ञान हुआ। इन्द्र ने जब अपने अवधिज्ञान से देखा तो उसने जाना कि यह जिनेश्वर देव के अनन्त सामर्थ्य का परिणाम है। इन्द्र व सभी देवताओं ने अपनी भूल महसूस की। इस घटना के बारे में कल्पसूत्र, चउपन्नमहापुरिसचरियं, महावीरचरियं, दिगम्बर पउमचरियं में विस्तार से आया है।

दिगम्बर ग्रन्थों में वर्णित है कि तीर्थंकर जब बालक रूप में होता है, तब बालक के अगूंठे में अमृत का लेप होता है।

आचारांग में तो स्पष्ट रूप से खीरधाई, मज्जणधाई आदि का उल्लेख है। क्षीरधातृ का कार्य भगवान

को दूध पिलाने का है, यदि वह दूध नहीं पिलाती थी तो उसका उल्लेख क्यों किया गया? अतः अमृतलेप का प्रसंग महिमामय होते हुए भी प्राचीन ग्रंथों के प्रमाण की अपेक्षा रखता है-जो कम उपलब्ध है।

त्रिशला क्षत्रियानी माता महावीर गज आदि चौदह स्वप्न देखकर प्रतिबुद्ध हुई। उसने महाराजा सिद्धार्थ कुलकर से चौदह स्वप्नों की बात कही। उन्होंने कहा- देवी! तुम्हारा पुत्र महान होगा। उस समय इन्द्र का आसन चलित हुआ और वह शीघ्र ही वहां आ पहुंचा। उसने आते ही कहा देवानुप्रिये! तुम्हारा पुत्र समस्त विश्व के लिए मंगलकारी होगा। यह सुनकर त्रिशला हृष्ट-तुष्ट हुई। वह आनन्दपूर्वक अपना गर्भ वहन करने लगी। नौ मास और साढ़े आठ (नौ) रात-दिन बीतने पर उसने एक अत्यंत स्वस्थ पुत्र का प्रसव किया। तीर्थंकर जब उत्पन्न होते हैं, तब संपूर्ण लोक में उद्योत होता है। तीर्थंकरों की माताएं प्रच्छन्नगर्भ वाली होती हैं। उनके जरा, रुधिर, कल्मष आदि नहीं होते। त्रिलोकीनाथ के जन्म लेते ही अधोलोकवास्तव्य आठ दिक्कुमारियोंके आसन चलित हुए। उन्होंने अपने अवधिज्ञान से भगवान महावीर के जन्म को जाना। दिव्ययान-विमान और समृद्धि के साथ शीघ्रता से आकर तीर्थंकर और तीर्थंकर जननी की अभिवंदना करती हुई वे बोली- हे जनयित्री! तुमको नमस्कार है। तुम जगत् प्रकाशी त्रिभुवन दीपक की मां हो। देवी! हम अधोलोकवासी आठ दिक्कुमारियां हैं। हमारे नाम इस प्रकार हैं- भोगकरी, भोगवती, सुभोगा, भोगमालिनी, सुवत्सा, वत्समित्रा, पुष्पमाला, अनिन्द्रिया। हम तीर्थंकर भगवान का जन्म महोत्सव मनाने आई हैं। आप भय न करें। तब उन्होंने उस प्रदेश में सैकड़ों खंभेवाले जन्म भवन की विकुर्वणा की और संवर्तक पवन की विकुर्वणा कर जन्म भवन के चारों ओर एक-एक योजन तक तृण, काष्ठ, कंकर तथा बालूरेत को साफ कर दूर फेंक दिया। तत्पश्चात् उड़ी हुई रेत आदि को शीघ्र ही उपशान्त कर माता सहित तीर्थंकर को प्रणाम कर उनके उपपात में गाती हुई बैठ गईं। उसके पश्चात् ऊर्ध्वलोक वास्तव्य आठ दिक्कुमारियां-मेघंकरी, मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, तोयधारा, विचित्रा, वारिसेना और बलाहका आदि आठ दिक्कुमारियों ने आकाश में बादलों की विकुर्वणा की। फिर भगवान के जन्म भवन के चारों ओर एक योजन तक वर्षा की। उस वर्षा से न अधिक जल इक्टठा हुआ और न अधिक मिट्टी। हल्की-हल्की वर्षा से वातावरण में सूक्ष्म रजें भी नहीं रहीं। वर्षा का पानी गंधोदक से सुरभित था। उसके बाद दिक्कुमारियों ने जल और स्थल में विकसित वृंत से युक्त तथा पांच वर्ण वाले पुष्प के बादलों की विकुर्वणा कर घुटनों की ऊंचाई जितने फूलों की वर्षा की। वे दिक्कुमारियां भी गीत गा रही थीं।

इसके बाद पूर्व दिशा के रुचक प्रदेशों में रहने वाली नंदा, नंदोत्तरा, आनन्दा, नंदिवर्धना, विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता-ये आठ दिक्कुमारियां वहां आईं। दिक्कुमारियों ने त्रिशला मां को भयभीत न होने के लिए कहा। वे दिक्कुमारियां माता सहित तीर्थंकर महावीर के सामने पूर्वदिशा में दर्पण लेकर खड़ी हो गई और गीत गाने लगीं। इसी प्रकार दक्षिण रुचक प्रदेशों में रहने वाली समाहारा सुप्रदत्ता, सुप्रबुद्धा, यशोधरा, लक्ष्मीवती, भोगवती, चित्रगुप्ता और वसुंधरा आदि आठ दिक्कुमारियां संसार को आनंद देने वाले महावीर और त्रिशला के समक्ष दक्षिण दिशा में भृंगार लेकर खड़ी हो गईं। पश्चिम रुचक प्रदेशों में रहने वाली इलादेवी, सुरादेवी, पृथ्वी, पद्मावती, एकनासा, नवमिका, सीता और भद्रा- ये आठ दिक्कुमारियां माता सहित भावी तीर्थंकर के पश्चिम दिशा में पंखे लेकर खड़ी हो गईं और गीत गाने लगीं। उत्तर रुचक प्रदेशों में रहने वाली अलंबुसा, मिश्रकेशी, पुण्डरीकिरी, वारुणी, हासा, सर्वप्रभा, श्री, ह्री आदि आठ दिक्कुमारियां बालक सहित त्रिशला माता के उत्तरदिशा में हाथ से चंवर

डुलाते हुए गीत गाने लगीं। इसके पश्चात् विदिशा में रहने वाली चित्रा, चित्रकनका, सत्तारा और सौदामिनी- ये चार विद्युतकुमारियां जननी सहित त्रिभुवनबंधु महावीर की चारों विदिशाओं में हाथ में दीपक लेकर खड़ी हो गईं और गीत गाने लगीं। इसके बाद मध्य रूचक में रहने वाली रूचका, रूचकांशा, सुरूचा और रूचकावती आदि चार दिक्कुमारियां पास आकर कोई रूकावट नहीं है, ऐसा जानकर, भव्यजनों के लिए कमलवन में मंडनस्वरूप भगवान महावीर की चार अंगुल वर्ज्य गर्भनाल काटने लगीं। एक विवर खोदकर नाभिनाल उसमें रखकर उसे रत्न और हीरों से भरने लगी। फिर हरियाली से उस पर वेदी बांधने लगी। तीर्थंकर के जन्म भवन के पूर्व दक्षिण और उत्तर दिशा में तीन कदलीगृहों की विकुर्वणा करके उसके बीच में तीन चन्द्रशालाओं की विकुर्वणा की। वे दिक्कुमारियां तीर्थंकर को हाथ में लेकर और माता को हाथों का सहारा देकर दक्षिण कदलीगृह के चतुःशाल के सिंहासन पर बिठाकर शतपाक और सहस्रपाक तैल से उनके शरीर का अभ्यंगन किया फिर सुरभित गंधोदक से उनके शरीर का उदवर्तन किया।

इसके बाद तीर्थंकर भगवान को हाथों में लेकर तथा माता को भुजाओं से सम्यक् रूप से पकड़कर पूर्वदिशा वाले कदलीगृह के चतुःशाला में स्थित सिंहासन पर बिठाकर स्नान करवाया। गंध काषयिक वस्त्र से शरीर को पोंछकर गीले गोशीर्षचंदन का लेप कर उन्हें दिव्य देवदूष्य पहनाकर सर्व अलंकारों से अलंकृत किया। इसके पश्चात् उत्तरदिशा में स्थित कदलीगृह के चतुःशाला में स्थित सिंहासन पर उन दोनों को बिठाया। इसके बाद आभियोगिक देवों ने चुल्ल हिमवंत पर्वत से गीले गोशीर्षचंदन की लकड़ी से अग्नि को प्रज्वलित किया। तत्पश्चात् अग्निहोम, भूतिकर्म तथा रक्षापोट्टलिका (बच्चे को बुरी नजर से बचाने के लिए किया जाने वाला उपचार) आदि कर्म किए। फिर भगवान के कर्णमूल में पत्थर के दो गोल टुकड़े बजाए। आपका आयुष्य पर्वत जितना लम्बा हो- ऐसा कहकर तीर्थंकर भगवान को हस्तपुटों में तथा उनकी माता को भुजाओं से पकड़कर जन्म भवन की शय्या पर बिठाया और बालक को उनके पास रखकर गीत गाती हुई भगवान के पास बैठ गईं।

इसके पश्चात् नाना मणि की किरणों से सुशोभित इंद्र का सिंहासन चलित हुआ। उसने अपने अवधिज्ञान से तीर्थंकर भगवान के जन्म को देखा और शीघ्र ही अपने पालक विमान से वहां आया। उसने भगवान तथा उनकी माता को तीन बार दाएं से बाएं प्रदक्षिणा की। वंदन एवं नमस्कार करके वह इस प्रकार बोला- रत्न कुक्षिधारक त्रिशला मां! तुमको नमस्कारं ! मैं भगवान का जन्म महोत्सव करना चाहता हूं। माता उत्सव में रूकावट न डाले इसलिए त्रिशला को अवस्वापिनी नींद में सुला दिया। इंद्र से तीर्थकर के प्रतिरूप की विकुर्वणा कर उसको तीर्थंकर की माता के पास रख दिया और भगवान के शरीर को हस्तपुट में लेकर अपने शरीर की पांच प्रकार से विकुर्वणा की। जिनेन्द्र को गृहीत एक शरीर, दोनों ओर दो इन्द्र हाथों में चमर धारण किए हुए, एक पवित्र आतपत्र लिए हुए और पांचवां हाथ में वज्र लिए हुए- इस प्रकार पांच शरीरों की विकुर्वणा की।

तब इंद्र चार प्रकार के देव समूह के साथ भगवान को लेकर शीघ्रता से मंदर पर्वत के पंडुकवन की मंदरचूलिका की दक्षिण दिशा में स्थित अतिपांडूकंबलशिला पर अभिषेक सिंहासन के पास गया और पूर्व दिशा के अभिमुख होकर सिंहासन पर बैठ गया। बत्तीस प्रकार के इन्द्र भगवान के चरण के निकट आए। सबसे पहले अच्युत देवलोक के इन्द्र ने अभिषेक किया फिर क्रमशः चमर, चन्द्र, सूर्य पर्यन्त सभी इन्द्रों ने अभिषेक किया। भगवान के जन्मअभिषेक के उत्सव से निवृत होकर इन्द्र सर्वऋद्धि से चार

प्रकार के देवों के साथ तीर्थंकर को लेकर माता के पास लौट आया। तीर्थंकर की प्रतिकृति का संहरण कर मूल तीर्थंकर को माता के पास सुला दिया। अवस्वापिनी विद्या का संहरण कर माता को जागृत किया। इन्द्र ने दिव्य क्षौमयुगल तथा कुंडलयुगल को भगवान के सिरहाने के पास रखा। एक श्रीदामगंड, स्वर्णोज्ज्वल लड़ियों का एक हार तथा नाना प्रकार के सुवर्णप्रतर मंडित नानामणिरत्नजटित हार अर्द्धहार आदि आभूषण भगवान के चंदेवे के ऊपर रखे। बालक तीर्थंक अनिमेषदृष्टि से देखते हुए सुखपूर्वक क्रीड़ा करने लगे। इन्द्र के कहने पर वैश्रमण देव ने बत्तीस करोड़ हिरण्य, बत्तीस करोड़ सुवर्ण, बत्तीस नन्दासन, बत्तीस भद्रासन भगवान के जन्मभवन में स्थापित किए। तब शक्र ने आभियोगिक देवों के साथ उच्च स्वर में उद्घोषणा की कि सभी भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों और देवियों! सुनो, जो कोई भगवान के प्रति अथवा उनकी जननी के प्रति मन में अशुभ भावना करेगा उसका सिर आर्यमंजरी की भांति सात टुकड़ों में विभक्त हो जाएगा। चारों प्रकार के देव भगवान की जन्म महिमा पर नंदीश्वरद्वीप में गए और वहां अष्टाह्निक उत्सव संपन्न कर अपने स्थान पर लौट गए।

इस प्रकार देवी-देवता प्रभु के जन्म महोत्सव पर नृत्य करते हैं और फिर सभी कार्यक्रम सम्पन्न होने पर बच्चे को राजा सिद्धार्थ के महलों में पहुंचा आते हैं।

सिद्धार्थ राजा द्वारा जन्म महोत्सव

राजा सिद्धार्थ को प्रभु के जन्म की सूचना प्रातःकाल मिलती है। सूचना देने वाली दासी प्रियंवदा थी। राजा सिद्धार्थ इस सूचना से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने उसे अपने मुकुट को छोड़ सभी आभूषण बधाई रूप में दे दिए। यही नहीं, उसे दासता से मुक्त भी कर दिया। विपुल धन भी दिया ताकि वह बाकी की जिन्दगी आराम से गुजार सके।[1]

फिर राजा सिद्धार्थ ने आरक्षकों को बुलाकर आज्ञा दी कि सारे राज्य में घोषणा कर दो - "कारागृह में सभी बन्दी मुक्त कर दो। सरकारी कर्जे समाप्त कर दो। किसी को किसी का कर्जा देना हो, तो उससे कहो कि उसका सारा ऋण राजा चुकाएगा, वह ऋण लेने न जाए।"

"बाजार में व्यापारियों से कहो कि हर जरूरतमंद को वस्तु निःशुल्क दो, उसके पैसे राजदरबार से प्राप्त करो।"

"जो वस्तुएं माप-तोल कर दी जाती हैं उसमें आज से वृद्धि कर दो।"

"नगर में सभी स्थानों पर सफाई करवाओ। सफाई के बाद सुगन्धित द्रव्य का छिड़काव करो।"

"राजमार्गों को सजाया जाए। मुख्य मार्ग पर मंच इस ढंग से बनाया जाए कि लोग दूर से राजसी समारोह को देख सकें। दीवारों पर सफेदी करवा दो और उन पर मंगल सूत्रकथाएं लगाओ। शहर में सभी नाटक-मण्डली, नृत्य-मण्डलियां, रस्सी पर खेलने वाले, कुश्ती और मुष्ठि-युद्ध करने वालों को, विदूषकों को, बन्दर के समान उछल-कूद करने वालों को, गड्ढे फांदने वालों को, नदी तैरने वालों को, कथा-वाचकों को, रास करने वालों को, बांस पर चढ़कर खेल दिखाने वालों को, हाथ में चित्र लेकर भिक्षा मांगने वाले मंखों को, तून नाम का वाद्य बजाने वालों को, वीणा, मृदंग व तालियां बजाने वालों को सुसज्जित करो। उन्हें त्रिक, चतुष्पथ (चौक) व चवर आदि में अपनी कला का प्रदर्शन करने की राजाज्ञा सुनाओ।"

राजाज्ञा से लगता है कि राजा सिद्धार्थ स्वतन्त्र राज्य के एकछत्र स्वामी थे। वे राज्य की राजधानी

में इतना कुछ करने का आदेश देते हैं जिनसे उनकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध होती है। जैसे कैदियों को छोड़ना, ऋण आदि खत्म करने का आदेश प्रमुखतः सम्पन्न राज्य के लक्षण हैं। वे कोई मामूली राजा या सामान्त नहीं थे। जैसे कि पश्चिमी विद्वानों का मत रहा है कि राजा सिद्धार्थ मामूली सामंत थे, कल्पसूत्र में उन्हें स्पष्ट राजा कहा गया है। कल्पसूत्र जैनधर्म का प्राचीन लिखित प्रमाण है जिसमें २४ तीर्थंकरों का वर्णन है। कल्पसूत्र में आगे कहा गया है - उसके बाद राजा व्यायामशाला में जाते हैं। दैनिक चर्या सम्पन्न करते हैं। फिर सजधज कर राजसभा में आते हैं। आनन्द और उल्लास के मधुर क्षणों में १० दिन के महोत्सव की घोषणा करते हैं जिसका नाम 'स्थित पतित' महोत्सव था। तीसरे दिन बालक को चन्द्र-सूर्य के दर्शन करवाए गए। छठे दिन रात्रि जागरण हुआ।

नामकरण संस्कार

बारहवें दिन नामकरण संस्कार हुआ। उस दिन राजा सिद्धार्थ ने अपने इष्ट मित्रों, स्वजनों, स्नेहियों व भृत्यों को आमन्त्रित कर भोजन, वस्त्र, अलंकारों से सबका सत्कार किया। सब लोग प्रसन्न थे। उन सभी के मध्य राजा सिद्धार्थ ने घोषणा की- "जिस दिन से यह बालक गर्भ में आया है हमारे राज्य-परिवार में हर प्रकार की वृद्धि होती जा रही है इसलिए हम इसका गुण निष्पन्न नाम वर्द्धमान रखेंगे।"

राजा सिद्धार्थ की बात का सब लोगों ने हर्ष-ध्वनि से स्वागत किया।

राज्य-परिवार व अधिकारी वर्ग

प्रभु महावीर के पिता के तीन नाम आचारांग व कल्पसूत्र में प्राप्त होते हैं-

(१) यशस्वी, (२) श्रेयांस, (३) सिद्धार्थ

महारानी त्रिशला जो विदेह देश वैशाली की सुपुत्री थीं उनके भी तीन नाम आए हैं।

(१) विदेहदित्रा, (२) प्रियकारिणी, (३) त्रिशला।

राजा सिद्धार्थ के लिए नरेन्द्र और क्षत्रिय शब्दों का प्रयोग हुआ है। कल्पसूत्र के अनुसार उनके दरबार में ये पदाधिकारी थे - गणनायक, दण्डनायक, युवराज, तलवर, माण्डलिक, कौटुम्बिक, मंत्री, महामंत्री, गणक, दैवारक, अमात्य, वीर, पीठमर्दक, नागर, निगम, कोठरी, सेनापति, सार्थवाह, दूत, संधिपाल। आचार्य देवेन्द्र मुनि जी ने अपने ग्रन्थ 'भगवान महावीर : एक अनुशीलन' में पश्चिमी विद्वानों की कड़ी आलोचना की है कि वह बिना किसी कारण के राजा सिद्धार्थ को सामन्त लिखते हैं। वह लिखते है- "यदि सिद्धार्थ साधारण क्षत्रिय होता तो क्या वैशाली का महान् प्रतापी चेटक, जो १८ देशों का प्रमुख भी था, उनसे अपनी प्रिय बहिन त्रिशला की शादी करता। त्रिशला भी एक सामान्य क्षत्रियाणी नहीं थी, वह भी महारानी थी।"

वर्द्धमान बड़े भैया नन्दीवर्द्धन थे। बहिन सुदर्शना थी। पत्नी यशोदा थी। भगवान महावीर की पुत्री प्रियदर्शना थी। भगवान महावीर के ससुर कलिंग सम्राट सामान्तसेन थे। उनकी एक नातिनी भी हुई। दिगम्बर साहित्य में सामन्तसेन के स्थान पर जितशत्रु नाम मिलता है और पत्नी यशोदा द्वारा दीक्षा ग्रहण करने का वर्णन है।

भगवान महावीर का परिवार बहुत आदर्श परिवार था। वहां किसी तरह का तनाव नहीं था। सभी परस्पर प्यार से रहते थे। सभी वर्द्धमान को जी-जान से चाहते थे। प्रभु वर्द्धमान के प्रसिद्ध नाम निम्न हैं-

वर्द्धमान -यह नाम उनके माता-पिता द्वारा प्राप्त हुआ जिसका वर्णन हम पीछे कर आए हैं। दिगम्बर पुराणों के अनुसार ''वर्द्धमान'' और ''वीर'' नाम इन्द्र द्वारा दिया गया है।

महावीर - जगत् प्रसिद्ध ''महावीर'' नाम इन्द्र द्वारा प्रभु को दिया गया है। क्योंकि किसी अन्य तीर्थंकर के जीवन में व साधना में इतने परीषह नहीं आए, जितने भगवान महावीर के जीवन में आए। उन्हें शान्त भाव से जैसे उन्होंने सहा, उसका उदाहरण कहीं उपलब्ध नहीं है। एक अन्य घटना में बचपन में देव को हराने के कारण भी इन्द्र ने उन्हें ''महावीर'' नाम दिया ऐसा उल्लेख आता है।

सन्मति- दिगम्बर उत्तरपुराण में इस नाम की एक कथा है- ''एक बार संजय और विजय दो आकाशगामी चारण मुनियों के मन में किसी उच्च तत्त्व की प्रति शंका उत्पन्न हुई। वह ज्यों ही भगवान के पालने के निकट आए उनकी शंका जाती रही।'' तभी से वर्द्धमान का सन्मति (अच्छी बुद्धि) यह नाम प्रसिद्ध हुआ।

काश्यप -यह भगवान महावीर का कुल था। बहुत से तीर्थंकरों का गोत्र काश्यप रहा है। उनका वंश इक्ष्वाकु था।

ज्ञातपुत्र -कल्पसूत्र में नाय, नायपुत्त, नायकुलचन्द्र, विदेह, विदेहदिन्न, विदेहजच्च और विदेहसुमाल नाम आए हैं। ये विशेषण में से पहले तीन पितृ पक्ष के हैं। अगले तीन मातृ पक्ष के हैं। यह नाम जैन आगमों व बौद्ध ग्रंथों में भगवान महावीर को अन्य धर्मनायकों से अलग करता है। जैन आगमों में यह नाम बहुत प्रसिद्ध है।

विदेह -भगवान की माता विदेह देश की थी। पिछले जमाने में एक राजा के कई रानियां होती थीं। वह अपनी संतान को अपने देशों की पहचान देती थीं।

वैशालिक- यह नाम उत्तराध्ययनसूत्र में आया है। उत्तराध्ययन सूत्र के टीकाकार ने कहा है कि प्रभु वैशालिक इसलिए कहलाए क्योंकि उनका कुल विशाल था। यह भी हो सकता है कि उनकी माता वैशाली नरेश चेटक की पुत्री थीं। इसलिए वह वैशाली से संबंधित हो गए। प्रस्तुत अध्ययन में प्रभु के जन्माभिषेक का हमने संक्षिप्त वर्णन कल्पसूत्र व उसकी टीका के आधार पर किया है। यह विवरण प्राचीन आचारांग सूत्र में कम मिलता है। वस्तुतः आगमों में कहीं भी प्रभु का जीवन व्यवस्थित ढंग से उपलब्ध नहीं था। इस कमी को सर्वप्रथम आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने अनुभव किया। उन्होंने आगम परम्परा को सामने रख प्रभु जीवन को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया। आवश्यकनिर्युक्ति, आवश्यक भाष्य, आवश्यक चूर्णि में २४ तीर्थंकरों के बारे में अच्छा वर्णन आया है।

उपरोक्त नामों में वर्द्धमान और महावीर ही प्रचलित हैं। बाकी नाम तो शास्त्रों तक ही सीमित हैं, जनसाधारण इन्हें नहीं जानता।

प्रभु महावीर की जन्म कुण्डली

ज्योतिष का विषय बहुत ही विस्तृत और गंभीर है। मूल आगमों में और कल्पसूत्र में प्रभु की जन्म कुण्डली उपलब्ध नहीं होती। वैसे आचारांगसूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध में उल्लेख है- ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास दूसरा पक्ष चैत्र सुदी त्रयोदशी को हस्तोत्तरा अर्थात् उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र का योग होने पर श्रमण भगवान महावीर का जन्म हुआ।

इन उल्लेखों से वर्तमान में प्रचलित राशियों का वर्णन नहीं है। इसके बाद जैन आचार्य भद्रबाहु ने मात्र ग्रहों के बारे में उल्लेख किया है।

''उच्चाणंगएसु महेसु।'' अर्थात् सभी ग्रह उच्च स्थानों पर थे। दूसरे- ''पुव्वरत्ताकालसमयंसि।'' अर्थात् प्रभु का जन्म मध्य रात्रि में हुआ। आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी ने 'भगवान महावीर : एक अनुशीलन' ग्रंथ के पृष्ठ २५४-२६३ तक उनकी कुण्डली का विवेचन किया है। वह एक स्थान पर लिखते हैं-

''इस (जैनशास्त्रों) से स्पष्ट है कि उस समय मेष आदि राशियों का प्रचलन भी नहीं था। यदि होता तो आंशिक रूप में कहीं न कहीं उल्लेख होता।''

आचारांग सूत्र और कल्पसूत्र के इन सूत्रों की व्याख्या कल्पसूत्र के टीकाकारों ने की है। उन्होंने ग्रहों के उच्च स्थान व अंशों का वर्णन इस प्रकार लिखा है-

ग्रह	राशि	अंश
सूर्य	मेष	१०
चन्द्रमा	वृषभ	३
मंगल	मकर	२८
बुध	कन्या	१५
गुरु	कर्क	५
शुक्र	मीन	२७
शनि	तुला	२०

कल्पसूत्र किरणावली टीका पत्र में कहा गया है- सुखी, भोगी, धनी, नेता, मण्डलपति, नृपति और चक्रवर्ती क्रमशः उच्च ग्रहों के प्रभाव के कारण होते हैं-

(१) तीन ग्रह उच्च होने पर नरेन्द्र होता है।

(२) पांच ग्रह उच्च होने पर अर्ध-चक्रवर्ती होता है।

(३) छह ग्रह उच्च होने पर चक्रवर्ती का भोग भोगता है।

(४) सात ग्रह उच्च होने पर तीर्थंकर होता है।

(५) यदि एक भी ग्रह उच्च हो तो वह व्यक्ति महान् उन्नति करता है। यदि दो-तीन ग्रह उच्च हों तो वह महान् उन्नति करता है। कल्पसूत्र में राहु व केतु ग्रहों का उल्लेख नहीं है।

आचार्य देवेन्द्र मुनि इस कुण्डली के विवेचन से पूर्ण सहमत नहीं लगते। वह अपने ग्रंथ 'महावीरः एक अनुशीलन' के पृष्ठ २६१ पर लिखते हैं-

''इस पद्धति से भगवान महावीर के जन्मकालीन ग्रहों में चन्द्रमा और बुध दोनों ग्रह निश्चित रूप से उच्चतम नहीं हैं।'' वह टीकाकार के इस कथन से भी सहमत नहीं कि सात ग्रह उच्च होने पर तीर्थंकर होता है।

वर्तमान में विभिन्न लेखकों ने ज्योतिष के आधार पर निम्न प्रकार की जन्म कुण्डली बनाई है। इसका विवेचन हम अपने विज्ञ पाठकों पर छोड़ेंगे। क्योंकि महावीर जैसे व्यक्ति की महानता ज्योतिष से ज्यादा उनके उपदेश में है। उनकी वह क्रान्ति है कि जो उन्होंने बिना किसी के सहारे संसार के सामने रखी। दासता, अस्पृश्यता, यज्ञ, वेद, पशुबलि को दूर करना किसी के वश का कार्य नहीं था। उन्होंने

मानवता के लिए अपना राजसुख, परिवार एक झटके में त्याग दिया।

माता	-	त्रिशला
पिता	-	सिद्धार्थ
जन्म स्थान	-	क्षत्रियकुण्डग्राम
समय	-	ई.पू.५९९
मास व तिथि	-	चैत्र त्रयोदशी
नक्षत्र	-	उत्तर फाल्गुनी
राशि	-	कन्या
लग्न	-	मकर

पाठकों को ध्यान रहे कि यह जन्म कुण्डली महावीर के जीवन में नहीं बनी थी। अगर बनी होती तो राजा ने जहां स्वप्न पाठकों को बुलाया था, वहां जन्म पर ज्योतिषियों से जन्म कुण्डली का निर्माण करवाते। पर यह बहुत बाद की बात है। उस समय राहू-केतु ग्रहों का उल्लेख ग्रंथों में नहीं आया। भगवान महावीर स्वामी के व्यक्तित्व के बारे में उववाईसूत्र में सुन्दर उल्लेख मिलता है।

"उनकी आंखें पद्यकमल के समान विकसित थीं। ललाट अर्ध-चन्द्रमा के समान दीप्तियुक्त था। वृषभ के समान मांसल स्कंध थे। भुजाएं लम्बी थीं। पूरा शरीर सुगठित था। सुन्दर आकार था। प्रज्ज्वलित निर्धूम अग्नि की शिखा के समान तेजस्वी था जिसे देखते ही मन मुग्ध हो जाता है। उनके शरीर को देखने के लिए आंखे बार-बार लालायित होती थीं। उनके दर्शन के साथ ही मन में भव्यता व प्रियता का भाव जाग पड़ता।[१०] उनका शरीर संगठन संस्थान, आकार अत्युत्तम था।[११] उनके शरीर की प्रभा निर्मल स्वर्ण रेखा की तरह थी।[१२] वह एक हजार आठ लक्षणों से युक्त था।[१३]

भगवती सूत्र में कहा गया है- "भगवान का शरीर उदार, श्रृंगाररहित, अलंकार रहित होते हुए भी विभूषित, लक्षण, व्यंजन और गुण से युक्त था, अत्यंत शोभायमान था।"

भगवान का जीव तीर्थंकर गोत्र के उपार्जन करने के कारण जन्म से तीन ज्ञान का धारक था। भगवान महावीर को अपने पूर्वभवों का ज्ञान था। मनुष्य में उनकी कान्ति और बुद्धि निराली थी। यही निराला ढंग उन्हें जनसामान्य में महान् बनाता है। महापुरुष के लक्षण अलग होते हैं, जो जन्म से ही प्रकट होने लगते हैं। ऐसा कुछ महावीर के व्यक्तित्व में छिपा था। उनके बाह्य दर्शन से व्यक्ति आनंदित हो जाता। उनका चेहरा चांद की तरह चमकता था।

भगवान महावीर का लालन-पालन बड़े पवित्र वातावरण में हुआ।

बाल- क्रीड़ाएं

महापुरुष का जीवन लीलाओं से भरा होता है। महापुरूष के जीवन में सब सहज घटित होता है। इन बाल-क्रीड़ाओं का सर्वप्रथम उल्लेख विशेषावश्यक भाष्य में और आवश्यकनिर्युक्ति में आया है जिसे बाद में आचार्यों ने विस्तृत रूप दिया।

इनमें प्रमुख उनकी आमलक-क्रीड़ा का वर्णन है। यह बात उस समय की है जब उनकी उम्र आठ वर्ष से कम थी। वह अपने गृह में स्थित उद्यान में खेल रहे थे। इस खेल में सभी बालक किसी एक वृक्ष

को लक्ष्य करके दौड़ते हैं। जो बालक वृक्ष पर चढ़कर नीचे उतर जाता है वह विजयी कहलाता है। विजयी बालक पराजित बच्चों की पीठ पर चढ़कर उस स्थान पर जाता है जहां से दौड़ प्रारम्भ होती है।

एक दिन बालक वर्धमान यही क्रीड़ा कर रहे थे। एक द्वेषी देव सांप का रूप बनाकर प्रभु के बल-पराक्रम की परीक्षा लेने आया। वह बच्चों को डराने लगा। बालक सांप के भय से भाग गए, पर किशोर वर्धमान ने उस सांप को बिना डरे, झिझके उठाया और दूसरे स्थान पर रख दिया।[14]

भगवान महावीर के बचपन का आगमों में कम वर्णन आया है। इसका कारण यह है कि जैन शास्त्रकारों ने त्याग-प्रधान घटना को प्रमुख रखा है। सांसारिक घटनाओं पर उन्होंने ज्यादा बल नहीं दिया है।

तिंदूषक क्रीड़ा

इसी तरह से मिलती-जुलती घटना तिंदूषक क्रीड़ा की है। आमल क्रीड़ा वाले दिन ही यह घटना हुई। बालकों ने पुनः खेलना शुरू किया। द्वेषी देव अब बालक के रूप में बच्चों के साथ मिल गया।

इस खेल में किसी वृक्ष को लक्ष्य रखकर सभी बालक दौड़ते हैं। जो वृक्ष को प्रथम छू लेता, वह विजयी बालक सभी हारने वालों के कंधे पर बैठता है। मायावी देव बच्चों के साथ खेल रहा है। वह जानबूझकर हार गया। उसे तो प्रभु के बल-पराक्रम की परीक्षा लेनी थी। यह देव इन्द्र द्वारा प्रभु की प्रशंसा सहन न कर सका था। उसका मानना था-देव बल के सामने मनुष्य का बल तुच्छ है।

पराजित देव ने बालक वर्धमान को अपने कंधे पर बिठाया। देव बना बालक चलने लगा। कुछ ही समय के बाद बालक बना देव विकराल रूप में प्रकट हुआ। उसने भयंकर पिशाच का रूप बनाया। प्रभु वर्धमान उसकी विकरालता देखने से न डरे, न घबराए बल्कि अकंप, अडोल रहे।

प्रभु महावीर ने उसके कंधे पर एक मुक्का मारा। मुक्का लगते ही देव अपनी असल स्थिति में आ गया। उसने अपनी करनी की क्षमा मांगी। फिर प्रभु की इन्द्र द्वारा की गई प्रशंसा को सच्चा मानते हुए उसने कहा- "प्रभु! प्रथम आप मेरा वन्दन स्वीकार करें। मेरी भूल को क्षमा करें। इन्द्र ने आपकी जितनी प्रशंसा की थी, आप तो उससे ज्यादा वीर व धीर हैं।" देव स्तुति कर अपने स्थान पर चला गया।

हाथी को वश में करना

इसी प्रकार की एक घटना दिगम्बर जैन ग्रंथों में भी उपलब्ध है। जब प्रभु भर यौवन में थे। एक हाथी राज्य में बिगड़ गया। सारे राज्यमें आतंक मचा दिया। राजा व सेना में भगदड़ मच गई। किसी महावत के काबू नहीं आ रहा था। तभी प्रभु महावीर वर्धमान रास्ते में गुजर रहे थे। उन्हें सामने देखकर हाथी शांत हो गया। प्रभु ने उस पर प्यार से हाथ फेरा फिर उसे महावत को सुपुर्द कर दिया।

ज्ञानी बचपन

भगवान महावीर का प्रारम्भिक जीवन शोधपूर्ण था। वह हर बात को अनेकों दृष्टिकोण से परखते हैं। प्रभु महावीर के बचपन की एक अन्य घटना का उल्लेख भी दिगम्बर साहित्य में मिलता है। कथा इस प्रकार है एक बार वर्द्धमान अपने महल की तीसरी मंजिल पर बैठे हुए थे। उनका महल सात मंजिला था। उनके साथी उनको ढूंढते ढूंढते आए। बालक जब दूसरी मंजिल पर पहुंचे तो उनका सामना पिताश्री से हुआ। बालकों ने पिताश्री से पूछा कि वर्द्धमान कहां है। पिताश्री ने उत्तर दिया वह ऊपर है। बालक

सबसे ऊपर वाली मंजिल पर चले गए तो वहां उनका सामना माता त्रिशला से हुआ। बालकों ने पूछा कि वर्द्धमान कहां है। माता ने कहा- वह नीचे वाली मंजिल पर है। थके हारे बालक हर मंजिल में ढूंढते ढूंढते तीसरी मंजिल पर पहुंचे। वहां उन्होंने वर्द्धमान को पाया। बालकों ने शिकायत की कि तुम्हारे पिता कहते थे कि आप ऊपर की मंजिल पर हो और माता श्री कहती है कि आप नीचे की मंजिल में हो। कृपया हमें बताइए कि वस्तु स्थिति क्या है? वर्द्धमान ने अपनी भाषा में कहा कि - मेरे माता और पिता दोनो सत्य कह रहे थे। पिता जी की दृष्टि में मैं ऊपर था क्यों कि वह नीचे की मंजिल में थे और माता की दृष्टि में मैं नीचे था। तो दोनों की दृष्टि सही है। इस प्रकार बचपन में ही वर्द्धमान ने अनेकान्त के बीज पनपने लगे थे और वे हर स्थिति में समन्वयवादी विचारधारा रखते थे।

पाठशाला में

जब बालक शिक्षा के योग्य होता है तो अभिभावकों को शिक्षा की चिंता लगना स्वाभाविक है। पिता सिद्धार्थ ने उन्हें आठ वर्ष की आयु में पाठशाला भेजा।

पिता जी ने उपाध्याय का सम्मान वस्त्र, अलंकार, नारियल से किया। पाठशाला के सब बच्चों को सामूहिक भोज दिया। फिर तीन ज्ञान के धारक प्रभु वर्धमान को सांसारिक पाठशाला में छोड़ आए। उन्होंने पाठशाला को राजकुमार के योग्य बनवाया। इसका लाभ पाठशाला के हर बच्चे को हुआ।

माता-पिता जब वर्धमान को अध्ययन के लिए भेज रहे थे, तभी इन्द्र का सिंहासन कंपायमान हुआ। उसने अवधिज्ञान से देखा- "तीन ज्ञान के धारक अंतिम तीर्थंकर को पाठशाला में भेजा जा रहा है।" इन्द्र ने उसी समय वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाया और पाठशाला में आ गया।

उसने कहा- "उपाध्याय जी! मेरे कुछ प्रश्न व्याकरण संबंधी हैं। अगर आप समाधान कर दें, तो मैं ऋणी रहूंगा।"

इन्द्र वेशधारी ब्राह्मण ने प्रश्न किए। बालक वर्धमान ने सभी प्रश्नों का उत्तर एक ही बार में दे डाले, जबकि उनके गुरु तक ने यह प्रश्न सुने नहीं थे। इन्द्र ने उन्हीं प्रश्नों को 'इन्द्र व्याकरण' का नाम दिया।

जब उपाध्याय ने इस बालक को देखा तो हतप्रभ रह गए। उन्होंने कहा- "तू तो जन्मजात ज्ञानी है। तुम्हें पढ़ाना हमारे बस की बात नहीं। वह उन्हें पहले दिन ही राजा के पास छोड़ आए।"

राजा सिद्धार्थ और महारानी त्रिशला वर्धमान की बुद्धि से प्रसन्न थे। अब वह घर आ गए।[19]

विवाह

भगवान महावीर के यौवन के विषय में जैनशास्त्र व इतिहासकारों ने बहुत कम लिखा है। उनके पारिवारिक जीवन में, उनके परिजनों के नामों के अतिरिक्त आचारांग, कल्पसूत्र आदि में कुछ विशेष वर्णन नहीं आता। यही हाल बाद का है। इस लम्बे अंतराल में कोई घटना घटित न हुई हो, यह तो असम्भव है।

श्वेताम्बर आगमों में प्रभु महावीर के श्वसुर का नाम जितशत्रु था। कलिंग नरेश समरसेन ने अपनी योग्य पुत्री कोण्डीय गोत्रीय यशोदा की शादी का प्रस्ताव राजा सिद्धार्थ के सामने रखा। सांसारिक दृष्टि से, राजा प्रभु महावीर का फूफा था।

श्वेताम्बर ग्रंथों के अनुसार उनका पाणिग्रहण हुआ और यह विवाह उन्होंने माता-पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए किया। जल में कमलवत् जीवन जीने का उदाहरण संसार के सामने रखा।

विवाह का विस्तृत वर्णन जैन आचार्य ने शायद इसलिए नहीं किया कि जैनशास्त्र के रचयिता साधु थे। सभी ब्रह्मचारी थे। उन्होंने उन्हीं घटनाओं को महत्त्व दिया जो महावीर को वैराग्य की ओर ले जाएं।

समवायांगसूत्र में इन तीर्थंकरों के बारे में बताया है कि वासुपूज्य, मल्ली, नेमि, पार्श्व और महावीर कुमारावस्था में दीक्षित हुए।

दिगम्बर परम्परा कुमार का अर्थ "कुआरा" करती है और प्रभु को ब्रह्मचारी मानती है। पर श्वेताम्बर परम्परा में 'कुमार' का अर्थ कुमार अवस्था अर्थात् जिन तीर्थंकरों ने राज्य शासन नहीं किया हो, वह कुमार हैं।[१६]

परन्तु आचारांग एवं कल्पसूत्र में भगवान की पत्नी का नाम यशोदा स्पष्ट लिखा है। वहां उनके चाचा का नाम सुपार्श्व आया है वह भी श्रमणोपासक था। वह प्रभु पार्श्वनाथ की परम्परा का उपासक था। भगवान महावीर ने परिवार में रहकर संसार को करीब से देखा, परखा तभी वह महान् बने। वैसे भी तीर्थंकरत्व के रास्ते में विवाह कोई रुकावट नही है। ज्यादा तीर्थंकरों ने शादी के बाद दीक्षा ली, पर दिगम्बर जैन भगवान पार्श्वनाथ व भगवान महावीर को अविवाहित मानते हैं।

इस प्रकार के वातावरण में राजकुमार वर्धमान ने संसार को बड़े करीब से देखा। उन्हें घर में कोई कमी नहीं थी। माता-पिता उन्हें अथाह स्नेह करते थे।

घटनाओं का क्रम चलता रहा। लगता है २६वें वर्ष से पहले उनकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया होगा। नहीं तो आचार्य उनका कहीं न कहीं वर्णन करते। इसलिए यशोदा का जीवन बीते कल की बात बन गया।

आश्चर्य की बात है कि आचार्य शीलांक ने यशोदा के साथ-साथ बहुत कन्याओं के साथ शादी का उल्लेख किया है। लगता है कि उन्होंने यशोदा के साथ आए दासी परिवार को भी शामिल कर लिया।

अब प्रश्न है यह समय कैसे गुजरा। हमारी कल्पना है कि प्रभु जन्म से तीन ज्ञान के धारक थे इसलिए उन्हें अपना भविष्य व होने वाली घटनाओं का पूर्ण ज्ञान था। वह क्षत्रिय राजकुमार थे। भावी तीर्थंकर थे। उन्होंने कुछ समय महल में रहकर व बाहर घूमकर, संसार में फैले ब्राह्मणवाद को करीब से जरूर देखा होगा। उनके रिश्तेदार तो सब प्राचीन निर्ग्रन्थ परम्परा के भक्त थे। पर बड़े-बड़े राज्यों में यज्ञों का आयोजन होता था। ये यज्ञ कई कई दिन चलते। राजा व प्रजा इनमें शामिल होती। हजारों पशु धर्म के नाम पर कत्ल हो जाते। इस हिंसा को देखकर उन्हें धंर्म के नाम पर हिंसा के भयंकर रूप का अनुभव हुआ होगा। अज्ञानी तो हिंसा अज्ञानवश करता है। पर तथाकथित पंडित भी धर्म के नाम पर हिंसा करे, वेदमंत्रों द्वारा पशु की बलि दे। खाने योग्य पदार्थ आग में 'स्वाहा' कहकर समाप्त कर दिया जाए। आज के मुकाबले तब कितना प्रदूषण रहा होगा। इसकी कल्पना असंभव है।

इसके अलावा उन्होंने समाज के निम्न कहे जाने वाले वर्ग की स्थिति को करीब से देखा होगा। शूद्र की स्थिति से वह अनभिज्ञ नहीं थे। उनकी बस्तियां शहर से बाहर होती थीं। उन्हें निम्न व घृणित कार्य करने पर मजबूर किया जाता था।

अस्पृश्यता का रोग समाज में घर कर चुका था। शूद्र अस्पृश्य है। वह वेदमंत्र न सुन सकता है, न पढ़ सकता है। शूद्र के लिए सजाएं अलग थीं। स्मृतियों में शूद्र के लिए अलग कानून व्यवस्था थी। जिन शास्त्रों में ब्राह्मणों ने इतनी असमानता भर रखी है उन्हें धर्मशास्त्रों का नाम दिया गया। उनमें ब्राह्मणों ने अपनी सुविधा अनुसार संस्कार व सामाजिक व्यवस्था का निर्माण किया था।

यह वह समय था जब पशुओं के साथ-साथ स्त्री जाति की अवस्था भी दयनीय थी। प्रभु महावीर ने स्त्रियों की दुर्दशा देखी। उनकी मंडियां लगती देखीं। दासों की मंडियां उस समय के सभ्य समाज का अंग थीं। किसी की सम्पन्नता में उसके पास दासों व स्त्रियों की गिनती होती थी। गुलामों की मंडियां भी लगती थीं। जिसमें देश विदेश के गुलामों की खरीदो फरोख्त होती थी।

स्त्रियों को किसी स्तर पर धर्म का अधिकारी नहीं समझा जाता था। वह धर्म के किसी अनुष्ठान में महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभा सकती थी। उस समय कोई पर्दा-प्रथा नहीं थी। इसके बावजूद स्त्रियों की दुर्दशा समाज के सभी वर्गों में एक सी थी। उन्हें आत्म-कल्याण के मार्ग से वंचित कर दिया गया था।

जैनधर्म का प्राचीन रूप बिल्कुल बिखर चुका था। लोग मांसाहार का धर्म के नाम पर प्रयोग करते थे। हिंसा के इस माहौल को बालक वर्धमान ने अपनी आंखों से देखा। उन्होंने स्त्रियों की दुर्दशा और समाज की उपेक्षा का गहन अध्ययन किया। एक बात देखने वाली है- महावीर ने अपनी जुबान बंद रखी। उन्होंने घर, परिवार में रहकर एक शब्द भी ब्राह्मण व वेद की हिंसा के विरुद्ध नहीं बोला। उपदेश देने से पहले वह अपने को कुछ बनाना चाहते थे। तपस्या की आग में तपकर आत्मा को कुन्दन बनाने का उनका लक्ष्य था। इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्हें अभिनिष्क्रमण का फैसला लेना था। हम देखते हैं कि प्रभु जोर जबरदस्ती में विश्वास नहीं रखते थे। वह अहिंसा, शांति, करूणा के मार्ग पर चलकर ही अपनी बात समझाना चाहते थे। ऐसे समय में जबकि स्त्री को अर्धांगिनी कहकर भोग की सामग्री समझा जाता था। स्त्रियों का कोई संस्कार मंत्र से नहीं होता था। ब्राह्मण चारों वर्णों की स्त्री से शादी कर सकता था। क्षत्रिय, ब्राह्मण को छोड़ तीन वर्णों की स्त्री से शादी कर सकता था। वैश्य (बनिया) ऊपर दो को छोड़ दो वर्णों की स्त्री से शादी कर सकता था। बेचारा शूद्र तो एक शादी करता था। उसके लिए हर व्यवस्था तोड़ने की सजा थी।

स्त्रियों व शूद्र को स्वतन्त्रता नहीं थी। तुलसीदास की भाषा में-

"ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी,
यह सब ताड़न के अधिकारी।"

शूद्र पशु व नारी से एक सा व्यवहार होता था। उन्हें कोई भी धार्मिक व सामाजिक अधिकार नहीं था। वैदिक कालीन अधिकार भी उस समय के ब्राह्मण ने क्षत्रियों से छीन लिए। अपनी महिमा मंडित करवाने के लिए यह आह्वान किया "पूजनीयो विप्रः शील गुण हीना।"

शील गुणों से हीन ब्राह्मण भी जन्म से पूजनीय है। शूद्र पर जुल्मों की कहानियां इतिहास बन गई हैं। आज भी इतना समय जाने पर हम वह अधिकार मातृ समाज व शूद्रों को नहीं दे पाए, जिनसे ब्राह्मणों ने उन्हें इस कारण वंचित कर दिया था कि वह शूद्र हैं।

महापुरुष तो महापुरुष होते हैं। पर महापुरुष क्रान्ति के अगुआ बने, तो युगों तक उनका नाम रहता है। देखने वाली बात है कि जिन बातों के लिए महावीर ने साढ़े बारह वर्ष कठोर साधना की, वे सुधार तो राजकीय कानून द्वारा किए जा सकते थे, पर महावीर किसी की आत्मा व शरीर को मजबूर करने के विरोधी थे।

माता-पिता का स्वर्गवास

दिगम्बर ग्रन्थों में भगवान महावीर की प्रतिज्ञा का कोई उल्लेख नहीं है तथा जब दीक्षा ली, तब

माता-पिता विद्यमान थे, यह भी कहा है। किन्तु श्वेताम्बर ग्रन्थों में स्पष्ट लिखा है कि प्रभु महावीर जब अठाईस वर्ष के हुए, तब उनके माता-पिता ने अपना अंतिम समय निकट देखकर आत्मा की शुद्धि के लिए कृतपापों की आलोचना की, फिर संथारा संलेखणा करके समाधि में शरीर त्यागा और अच्युत विमान में उत्पन्न हुए।

माता-पिता स्वर्गवासी हो जाने पर प्रभु ने सोचा-अब मेरी गर्भस्थ प्रतिज्ञा पूरी हो गई है। अब मुझे दीक्षा लेनी चाहिए। उन्होंने अपनी बात अपने भ्राता नंदीवर्द्धन व चाचा सुपार्श्व के सम्मुख रखी।[१७]

अपने इस विचार से उन्होंने बड़े भ्राता नंदीवर्द्धन को अवगत कराया। उनके इस फैसले से नंदीवर्द्धन बहुत दुःखी हुए। उसने कहा- "अभी माता-पिता के वियोग के दुःख को हम विस्मृत ही नहीं कर पाए हैं और तुम प्रव्रज्या की बात करते हो। क्या यह कार्य इस समय घाव पर नमक छिड़कने के बराबर नहीं है? अतः कुछ काल तक ठहरो, बाद में प्रव्रज्या ले लेना। तब तक हम शोक रहित हो जाएंगे।"[१८]

जब परिजनों की बात को प्रभु महावीर ने सुना, तो सोचा- 'यह लोग सचमुच दुःखी हैं। कुछ समय रुककर मुझे इन्हें धैर्य बंधाना चाहिए।' इस बात को ध्यान में रखकर उन्होंने उत्तर दिया-अच्छा, "तो मुझे कब तक ठहरना होगा?" परिजनों ने कहा- "कम से कम दो वर्ष, तब तक शोक शांत हो जाएगा।"[१९]

परिवार वालों की बात सुनकर प्रभु ने उत्तर दिया- "ठीक है, मैं आपकी आज्ञा को दो वर्ष के लिए शिरोधार्य करता हूं। उसके बाद मैं स्वतन्त्र हो जाऊंगा। आप वायदा कीजिए कि मुझे रोकेंगे नहीं।"

इस तरह दो वर्ष का समय शुरू हुआ। वह घर में संन्यासी बन गए। शास्त्र कहते हैं- "वह विरक्तभाव से घर में रहते थे। वे सचित्त जल से स्नान नहीं करते थे। हाथ-पैरों का प्रक्षालन भी अचित्त जल से करते थे। आचमन भी उसी का लेते थे। इस अवधि में अप्रासुक आहार व रात्रि भोजन का उपयोग भी नहीं किया।[२०] ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन किया। महाव्रतों का पूर्ण पालन किया। भू-शयन किया। क्रोध आदि कषायों से रहित हो एकत्व भाव में लीन रहें।"[२१]

चक्रवर्ती नहीं

आचार्य देवेन्द्र मुनि जी ने एक घटना के द्वारा लिखा है कि प्रभु महावीर के जन्म के समय चक्रवर्ती के सारे लक्षण थे। कई लोगों के मन में भ्रम पैदा हो गया कि हो न हो कुमार चक्रवर्ती न हो। इस दृष्टि से श्रेणिक, चण्डप्रद्योतन आदि राजाओं ने उनकी सेवा में अपने कुमार भेजे। पर प्रभु महावीर तो वीतरागता के प्रतीक थे। प्रभु की विरक्तता देखकर सबको विश्वास हो गया कि प्रभु महावीर चक्रवर्ती बनकर हमारा राज्य नहीं छीनेंगे। हमारे साथ सद्व्यवहार करेंगे।

फिर धीरे-धीरे सेवा में रहने वाले सभी राजाओं ने देखा- "प्रभु महावीर तो निष्परिग्रही हैं। त्यागी आत्मा हैं। घर, परिवार के मोह से कोसों दूर हैं।" तो वे चल दिये।[२२]

उन्होंने अपने राजाओं को बताया- सिद्धार्थ क्षत्रिय का पुत्र तो विरक्त आत्मा है, इसे संसार से कुछ लेना-देना नहीं। इस व्यक्ति से हमें कोई भय नहीं होना चाहिए। इस तरह सभी राजा भययुक्त हो गए।

लोकान्तिक देवों की प्रेरणा व वर्षीदान

भगवान महावीर की दीक्षा व वर्षीदान का वर्णन कल्पसूत्र एवं आचारांगसूत्र में आया है। कल्पसूत्र

में आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने कितने सुन्दर शब्दों में कहा है-

श्रमण भगवान महावीर दक्ष थे, दृढ़ प्रतिज्ञ थे, असामान्य रूपवान थे, स्वात्मलीन थे, सरल स्वभावी थे, अनुपम कान्तिवान थे, अत्यन्त सुकुमार थे, सुप्रसिद्ध थे, ज्ञातवंश चन्द्रमा के समान थे, विदेह थे, विदेहदिन्ना (त्रिशला-पुत्र) थे, विदेहजात्य थे। वे तीस वर्ष तक गृहस्थावास में रहे। पर वह निर्लेप कमल की तरह होकर विचरे। अपने माता-पिता के स्वर्गवास के बाद, गर्भ के लिए संकल्प के पूर्ण हो जाने पर अपने से बड़े की अनुमति प्राप्त कर वे गृह-त्याग के लिए तैयार हुए।

उस समय लोकन्तिक जीतकल्पी देवों ने परम्परानुसार कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मन को छूने वाली, उदार, कल्याण, शिव और छद्म रूप, मंगलकारी, मृदु, मधुर, मंजुल, शोभाकारी, मन में उतर जाने वाली, चित्त को प्रसन्न करने वाली, गम्भीर और पुनरुक्ति रहित वाणी में बार-बार अभिनन्दन करते हुए भगवान महावीर की स्तुति की और कहा-

"हे नन्द! आपकी जय हो! विजय हो! हे लोकनाथ! हे भगवान! बोध प्राप्त करो। सारे संसार के सभी प्राणियों के हित के लिए धर्मतीर्थ प्रवर्तन करो, जो परम हित सुख प्रदान करने वाला होगा।" इसके बाद देवताओं ने जयघोष किया।

यहां एक विभिन्नता कई आचार्यों में पाई जाती है- किसी ने पहले वर्षीदान लिखा है, किसी ने देवों के संबोधन के बाद। तीर्थंकर एक वर्ष दान देते हैं, यह तीर्थंकर परम्परा का महत्त्वपूर्ण लोकोपकारी कार्य है।

विशेषावश्यकभाष्य में दान का प्रसंग इस प्रकार है- "दान देने की प्रक्रिया प्रतिदिन पूर्वाह्न में दीक्षा से एक वर्ष तक चलती रही। प्रातः भोजन के समय दान देने आते, वह भी चौराहों पर, बाजारों में, गलियों में इस प्रकार की घोषणा होती कि जिनको जो मांगना है वह मांगे, जो मांगेगा उसे वह वस्तु मिलेगी। इस प्रकार प्रतिदिन एक करोड़ आठ लाख सुवर्ण मुद्राओं का दान होता।"[२३]

आवश्यकचूर्णि और महावीरचरियं में वर्णन है कि जब दीक्षा लेने का एक वर्ष अवशेष रहा तब महावीर ने मन में एक वर्ष के भीतर घर छोड़ने का ध्यान आया। उसी समय देवेन्द्र का सिंहासन कम्पायमान हुआ। उसने अपने देव-बल से राजसी खजाने में ३ अरब, ८८ करोड़, ४० लाख स्वर्ण मुद्राएं पहुंचाई। फिर प्रतिदिन सभी प्रकार के जरुरतमंदों की जरूरतें पूरी करने लगे।

आचारांगसूत्र व कल्पसूत्र में सर्वस्व त्याग का वर्णन है। उन्होंने अपनी सारी सम्पदा का त्याग कर दिया। वह सम्पत्ति किसको दी, इसका वर्णन नहीं है। मात्र 'दान' का उल्लेख है। बाद के आचार्यों ने इस दान शब्द की परम्परा अनुसार व्याख्या की है। यह परम्परा पूर्व तीर्थंकरों की परम्परा का अनुसरण है।

आचारांगसूत्र में लोककांतिक देवों के आगमन का भी वर्णन नहीं आया। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि आचारांगसूत्र में भगवान महावीर का वर्णन पहले अंग में संक्षिप्त रूप में आया है।

nn

---

१. इनका वर्णन कल्पसूत्र में देखें- सूत्र ३४-३७
२. कल्पसूत्र ४१-४५
३. कल्पसूत्र ५६-५७
४. कल्पसूत्र ६६-६९
५. त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र ४/१/२१७

६. वही ४/१/१६८
७. वही
८. काललोकप्रकाश, सर्ग ३०, पृष्ठ १९९
९. विशेशा. भा. १८४६-१८४७
१०. उववाई सूत्र १
११. (क) प्रज्ञापनासूत्र २३ (ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १/१३१
१२. आवश्यक मलयगिरि वृति, गाथा ३७७
१३. त्रिषष्टिशलाका पूरुष चरित्र १०/२/१०२
१४. (क) आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ २४६ (ख) हारिभद्रीया वृत्ति, पृष्ठ १८१ (ग) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, पृष्ठ २५८ (घ) चउप्पन महापुरिस चरियं, पृष्ठ २७१ (ड) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/२,१०३-१०७ (च) उत्तरपुराण ७४२८६-२९५ (छ) महावीरचरियं- नेमिचंद ७५-८६, पृष्ठ ३५, गुणचन्द ५४९
१५. विशेषावश्यकभाष्य १/८५७-१/८५८ आव.हारि. वृत्ति, पृष्ठ १८२, मलयगिरि वृत्ति, पृष्ठ २५९/१, महावीरचरियं, गाथा ९२-९५, पृष्ठ ३४ महावीरचरियं गुणचन्द, पृष्ठ १२७, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र १०/२/१९९, आवश्यक वृत्ति २८२
१६. (क) कुमारो युवराजेऽश्ववाहके बालक शुके। शब्द रत्न समन्वय कोष, २६८
(ख) युवराज : कुमार भर्तृदारक। अभिधान चिंतत्तमणि, काण्ड २, श्लोक २४६
१७. (क) आवश्यकचूर्णि,पृष्ठ २४९ (ख) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, पृष्ठ १४३ (ग) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, पृष्ठ २६० (घ) महावीरचरियं, गुणचन्द्र, पृष्ठ १३४
१८. आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ २४९
१९. वही, पृष्ठ २४९
२०. (क) वही,पृष्ठ २४९ (ख) आचारांग १/१/११
२१. (क) आचारांग टीका, पृष्ठ २७५ (आगमोदय समिति) (ख) आवश्यकचूर्णि १, पृष्ठ १४८
२२. कल्पसूत्र, कल्पलता व्याख्यान १२३-१
२३. आवश्यकनिर्युक्ति २०२, विशेषावश्यक १६४०
आवश्यकनिर्युक्ति २०३, विशेषावश्यक १६४१

दीक्षा-कल्याणक

तीर्थंकर के जीवन में जो पंच-कल्याणक होते हैं गर्भ कल्याणक, जन्म कल्याणक, दीक्षा कल्याणक, केवलज्ञान कल्याणक, निर्वाण कल्याणक। उनमें तीसरा है दीक्षा-कल्याणक। यह दीक्षा-कल्याण आचारांग व कल्पसूत्र में बड़े मार्मिक ढंग से उल्लिखित हैं।

भगवान महावीर ने ३० वर्ष पूर्ण होने पर भरी तरुणाई में संसार-त्याग का प्रस्ताव बड़े भ्राता नन्दीवर्द्धन व चाचा सुपार्श्व के समक्ष रखा। इस बार किसी ने प्रतिरोध नहीं किया। वह वर्द्धमान के स्वभाव से भलीभांति परिचित थे।

आचारांगसूत्र में कहा गया है-

"अभिनिष्क्रमण की बात जानकर भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष और वैमानिक देव-सम्पदा के साथ क्षत्रिय कुण्डग्राम में आए। उन्होंने वैक्रिय शक्ति से सिंहासन की रचना की। सभी ने प्रभु महावीर को पूर्वाभिमुख बैठाया। फिर शतपाक व सहस्रपाक तेल की मालिश कर स्वच्छ जल से स्नान करवाया। गंध कषाय वस्त्र से शरीर को पोंछा, फिर गोशीर्ष चन्दन का लेप किया। अल्प भार वाले और बहुमूल्य वस्त्र व आभूषण पहनाए।"

इन कार्य से निवृत्त हो प्रभु महावीर सुविस्तृत, सुसज्जित चन्द्रप्रभा नामक शिविका में आरूढ़ हुए। मनुष्यों, इन्द्र व देवों ने मिलकर उस शिविका को उठाया। राजा नन्दीवर्द्धन गजारूढ़ होकर अपनी चतुरंगी सेना के पीछे पीछे चल रहे थे।

कल्पसूत्र में इस दृश्य को इस तरह चित्रित किया गया है-

"श्रमण भगवान महावीर मानव के रूप में गृहस्थ धर्म में प्रवेश से पहले ही अनुत्तर हैं। इन्द्रियातीत अप्रतिहत ज्ञान और दर्शन के धारक हैं।"

"जब उन्होंने अपने ज्ञान से यह जाना कि उनके अभिनिष्क्रमण का समय आ गया है, तब उन्होंने चांदी, सोना, धन, राज्य, राष्ट्र, सेना, वाहन, कोष, कोषागार, पुर, अन्तःपुर, जनपद आदि सभी सांसारिक वस्तुओं का त्याग कर दिया। उन्होंने अपने अधिकार में रहे विपुल धन, सोना, रत्न, मणि, मोती, शंख, शिला, मूंगा, माणक आदि सभी समृद्धि सूचक पदार्थों को अपने सम्बन्धियों में बांट दिया और याचकों को दान में दे दिया।"

हेमन्त ऋतु के प्रथम महीने का पहला पक्ष चल रहा था- मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी के दिन छाया पूर्व की ओर ढलने लगी थी और प्रमाणोपेत पौरूषी आ गई थी। उस समय सुव्रत दिवस था, विजय मुहूर्त्त में श्रमण भगवान महावीर को चन्द्रप्रभा पालकी पर पूर्व दिशा की ओर बैठाया गया। पालकी के पीछे देव, मानव और असुरों के समूह चल रहे थे। उस दीक्षा महोत्सव यात्रा में आगे कितने ही जन शंख बजाते हुए, चक्र लिए हुए, मुख माण्डलिक (विरुदावली बोलने वाले), वर्द्धमानक (कंधों पर बैठाने वाले), मंगल पाठक और घण्टा बजाने वाले चल रहे थे। दर्शक लोग इष्ट, मधुर, मन आह्लादित करने वाली वाणी में भगवान का अभिनन्दन और उनकी स्तुति करने लगे-

"हे नन्द! तुम्हारी जय हो! जय हो! तुम्हारी जय हो, जय हो। तुम्हारा कल्याण हो। निर्मल ज्ञान, दर्शन, चारित्र द्वारा नहीं जीती हुई इन्द्रियों को जीतो और श्रमणधर्म का पालन करो।"

"हे देव! बाधाओं पर विजय प्राप्त कर तुम मोक्ष की स्थिति में विचरण करो। तप से राग-द्वेषरूपी मल्लों का नाश करो। धैर्य रूप सुदृढ़ कच्छ बांधकर, श्रेष्ठ शुक्ल छाया से आठ कर्म शत्रुओं का मर्दन करो। हे वीर! अद्भुत बनकर त्रिलोक के रंग मण्डप पर आराधना की विजय ध्वजा फहराओ। अंधकार से परे अनुत्तर

और श्रेष्ठ केवलज्ञान को प्राप्त करो। परीषहों की सेना का नाश करो। हे क्षत्रियों में श्रेष्ठ नरपुंगव! तुम्हारी जय-विजय हो। परीषहों, उपसर्गों और भय भैरव प्रसंगों के बीच बहुत दिनों, पक्षों, महीनों, ऋतुओं, अयनों और वर्षों तक शान्ति और क्षमा को धारण कर निर्भीक होकर विचरण करो। तुम्हारी धर्म-साधना निर्विघ्न हो।"

सूत्र ११३ में आगे इस दीक्षा की शोभा-यात्रा की भव्यता वर्णित करते हुए कहा है कि ऐसी ऐश्वर्यशाली धर्म-यात्रा सहित, श्रमण भगवान महावीर कुण्डपुर नगर में से होते हुए ज्ञातखण्डवन नामक उद्यान में, जहां अशोक वृक्ष था, वहां पहुंचे।

भगवान महावीर की पालकी को अशोक वृक्ष के नीचे रखा गया। प्रभु महावीर पालकी के नीचे उतरे। उन्होंने अपने समस्त वस्त्र, आभूषण, माला, अलंकार आदि उतारे, फिर पंचमुष्टि लोच किया। उन्होंने छद्म भक्त ग्रहण किया। उस दिन हस्तोत्तरा नक्षत्र का योग आने पर, मात्र देवेन्द्र द्वारा प्रदत्त एक देवदूष्य धारण किए हुए, गृहवास त्याग कर अनगार बन गए। सिद्धों को नमस्कार करके सामायिक चारित्र ग्रहण किया।

शकेन्द्र ने प्रभु महावीर के केशों को ग्रहण किया और इन केशों को क्षीर सागर में प्रवाहित किया। कई ग्रन्थों में वस्त्र, आभूषण, कुल महत्तरा लेती है और प्रभु महावीर को संयम जीवन पालने की प्रेरणा देती है। कई ग्रन्थों में ये वस्तुएं शक्रेन्द्र ग्रहण करता है। इन वस्तुओं को ग्रहण करने के बारे में विभिन्न मान्यताएं हैं। दीक्षा लेते ही प्रभु महावीर को चौथा मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया, जिसके प्रभाव से वे अढ़ाई द्वीप और दो समुद्र तक समनस्क प्राणियों के मनोगत भावों को जानने लगे।[1]

भगवान महावीर ने देवेन्द्र द्वारा प्रदत्त देवदूष्य वस्त्र को अपना जिन आचार समझकर वाम स्कन्ध पर धारण किया।[2]

आचारांग, कल्पसूत्र, आवश्यकसूत्र सभी में देवदूष्य वस्त्र का उल्लेख है।

दिगम्बर परम्परा में देवदूष्य वस्त्र का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि वस्त्र को वहां परिग्रह की श्रेणी में रखा गया है।

इस प्रकार का व्रत ग्रहण करने के बाद प्रभु ने एक अभिग्रह और किया, जिसका वर्णन आचारांगसूत्र में मिलता है। यह उल्लेख कल्पसूत्र में नहीं मिलता है।

आज से साढ़े बारह वर्ष पर्यंत जब तक केवलज्ञान उत्पन्न न हो, तब तक मैं देह की ममता को छोड़कर रहूंगा। इस बीच देव, मानव व तिर्यंच जीवों की ओर से जो उपसर्ग होंगे उनका समभावपूर्वक सहन करूंगा।[3]

विशेषावश्यक भाष्य में तो प्रभु ने कहा- "आज से सब पाप मेरे लिए अकरणीय - न करने योग्य हैं।"

संसार के इतिहास के अन्दर जिस जर, जोरू, जमीन के लिए संघर्ष होते रहे हैं, उन तीनों को भगवान महावीर ने सहर्ष ठोकर मार दी। संसार में इसी कारण महावीर के समान दूसरा आदर्श पुरूष मिलना दुर्लभ है। उनका जीवन असिधारा पर चलने जैसा था।

सांसारिक दृष्टि से देखा जाए, तो तीस वर्ष की आयु क्या होती है? खाने, पीने, मजा करने की उमर होती है। पर वर्द्धमान को महावीर बनना था। उन्हें इन वस्तुओं के नाम मात्र की भी आसक्ति नहीं थी।

इसी आयु में उन्होंने परिवार व राज्य सुख छोड़ा। दृढ़ संकल्प कर साधना के कठोर मार्ग पर कदम बढ़ाया। nn

---

१. (क) आयारो तह आयार चूला २/१४/३३ (ख) महावीर चरियं ४/८, पृष्ठ १

२. आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ १६८

३. आयारो २/१५/३४